

## Chapter दस

### परम भगवान् रामचन्द्र की लीलाएँ

इस दसवें अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह महाराज खट्वांग के वंश में भगवान् रामचन्द्र उत्पन्न हुए। इसमें भगवान् के कार्यकलापों का भी वर्णन हुआ है जिसमें रावण को मारकर अपनी राजधानी अयोध्या लौटना भी सम्मिलित है।

महाराज खट्वांग के पुत्र दीर्घबाहु थे और उनके पुत्र रघु हुए। रघु के पुत्र अज थे और अज के पुत्र दशरथ थे जिनके पुत्र थे भगवान् श्रीरामचन्द्र। जब भगवान् इस धरा पर अपने पूर्ण चतुर्व्यूह स्वांश—रामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न—समेत अवतरित हुए तो वाल्मीकि जैसे परम सत्य के वेत्ताओं ने उनकी दिव्य लीलाओं का वर्णन किया। श्रील शुकदेव गोस्वामी ने संक्षेप में इन लीलाओं का वर्णन किया है।

भगवान् रामचन्द्र ने विश्वामित्र के साथ जाकर मारीच जैसे राक्षसों को हताहत किया। फिर अत्यन्त दृढ़ एवं कठोर हरधनु नामक धनुष को तोड़कर सीतादेवी से व्याह किया और परशुराम का मान-मर्दन किया। फिर अपने पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए वे लक्ष्मण तथा सीता सहित जंगल में चले गये। वहाँ उन्होंने शूर्पणखा की नाक काटी और खर-दूषण जैसे रावण के पार्षदों का वध किया। रावण द्वारा सीता का अपहरण इस असुर के दुर्भाग्य का सूत्रपात बना। जब मारीच ने स्वर्णमृग का रूप धारण किया तो सीतादेवी को प्रसन्न करने के लिए भगवान् रामचन्द्र उस मृग को लाने गये, किन्तु इसी बीच में भगवान् की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर रावण सीताजी को हर ले गया। सीतादेवी का हरण होने पर भगवान् रामचन्द्र लक्ष्मण समेत जंगल में उनकी खोज करते रहे। खोज करते करते, उनकी भेंट जटायु से हो गई। तत्पश्चात् भगवान् ने असुर कबन्ध तथा सेनापति बालि को मारा और सुग्रीव से मैत्री स्थापित की। वानरों की सेना बनाकर तथा उनके साथ समुद्र तट पर पहुँचकर भगवान् ने साक्षात् समुद्र के आगमन की प्रतीक्षा की, किन्तु उसके न आने पर भगवान् समुद्र के राजा पर क्रुद्ध हुए। तब समुद्र दौ-दौ आया, उनकी शरण ग्रहण की और उनकी हर प्रकार से सहायता की। तब भगवान् ने समुद्र पर सेतु बाँधना चाहा और विभीषण की सलाह पर उन्होंने रावण की राजधानी लंका पर आक्रमण कर दिया। इसके पूर्व भगवान् के नित्य दास हनुमान ने लंका में आग लगा दी थी और अब लक्ष्मण की सहायता से भगवान् रामचन्द्र की सेना ने सारे राक्षस

सैनिकों का वध कर डाला। तन भगवान् ने स्वयं रावण को मारा। मन्दोदरी तथा अन्य पत्नियाँ रावण के लिए शोक करने लगीं और भगवान् रामचन्द्र के आदेशानुसार विभीषण ने परिवार के समस्त मृतकों का दाह-संस्कार किया। तत्पश्चात् भगवान् रामचन्द्र ने विभीषण को लंका पर राज्य करने का अधिकार सौंपा और उसे दीर्घायु भी दी। भगवान् ने अशोक वाटिका से सीतादेवी का उद्धार किया और उन्हें पुष्पक विमान में चढ़ाकर वे अपनी राजधानी अयोध्या ले गये जहाँ उनके भाई भरत ने उनका स्वागत किया। जब भगवान् रामचन्द्र अयोध्या में प्रविष्ट हुए तो भरत उनकी खड़ाऊँ ले आये। विभीषण और सुग्रीव चँवर तथा पंखा पकड़े थे, हनुमान छाता ताने थे, शत्रुघ्न भगवान् का धुनष तथा दो तरकस लिये थे और सीतादेवी पवित्र स्थानों से लाये गये जल से पूर्ण एक जलपात्र लिये थीं। अंगद ने तलवार ले रखी थी, (ऋक्षराज) जाम्बवन्त ढाल लिये थे। जब भगवान् रामचन्द्र लक्ष्मण तथा सीतादेवी समेत अपने सभी परिजनों से मिले तो वसिष्ठ महामुनि ने उन्हें राजा के रूप में सिंहासन प्रदान किया। यह अध्याय अयोध्या में भगवान् रामचन्द्र के राज्य केसंक्षिप्त वर्णन के साथ समाप्त होता है।

श्रीशुक उवाच

खट्वाङ्गादीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात्पृथुश्रवाः ।  
अजस्ततो महाराजस्तस्माद्दशरथोऽभवत् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; खट्वाङ्गात्—महाराज खट्वांग से; दीर्घबाहुः—दीर्घबाहु नामक पुत्र; च—तथा; रघुः तस्मात्—उससे रघु उत्पन्न हुआ; पृथु-श्रवाः—साधु तथा विख्यात; अजः—अज नामक पुत्र; ततः—उससे; महा-राजः—महाराज; तस्मात्—अज से; दशरथः—दशरथ नामक; अभवत्—उत्पन्न हुआ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : महाराज खट्वांग का पुत्र दीर्घबाहु हुआ और उसके पुत्र विख्यात महाराज रघु हुए। महाराज रघु से अज उत्पन्न हुए और अज से महापुरुष महाराज दशरथ हुए।

तस्यापि भगवानेष साक्षाद्ब्रह्ममयो हरिः ।  
अंशांशेन चतुर्धागात्पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः ।  
रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तस्य—महाराज दशरथ के; अपि—भी; भगवान्—भगवान्; एषः—वे सभी; साक्षात्—प्रत्यक्ष; ब्रह्म-मयः—परब्रह्म या परम सत्य; हरिः—भगवान्; अंश-अंशेन—पूर्ण अंश के अंश से; चतुर्धा—चार प्रकार के विस्तार; अगात्—स्वीकार किया; पुत्रत्वम्—पुत्र

बनना; प्रार्थितः—प्रार्थना किये जाने पर; सूरैः—देवताओं के द्वारा; राम—भगवान् रामचन्द्र; लक्ष्मण—लक्ष्मण; भरत—भरत; शत्रुघ्नाः—तथा शत्रुघ्न; इति—इस प्रकार; संज्ञया—विभिन्न नामों से।

देवताओं द्वारा प्रार्थना करने पर भगवान् परम सत्य अपने अंश तथा अंशों के भी अंश के साथ साक्षात् प्रकट हुए। उनके पवित्र नाम थे राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न। ये विख्यात अवतार महाराज दशरथ के पुत्रों के रूप में चार स्वरूपों में प्रकट हुए।

तात्पर्य : भगवान् रामचन्द्र तथा उनके भाई लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न—ये सभी जीव तत्त्व न होकर विष्णुतत्त्व हैं। भगवान् अनेकानेक रूपों में अपना विस्तार करते हैं। *अद्वैतम् अच्युतम् अनादिम् अनन्तरूपम्*। यद्यपि वे सभी एक ही हैं, किन्तु विष्णुतत्त्व के अनेक रूप एवं अवतार होते हैं। जैसा कि *ब्रह्म-संहिता* में (५.३९) पुष्टि की गई है—*रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्*। भगवान् अनेक रूपों में विद्यमान हैं यथा राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न और ये रूप उनकी सृष्टि के किसी भी कोने में स्थित हो सकते हैं। ये सभी रूप स्थायी रूप से, शाश्वत रूप से ईश्वर के व्यष्टि रूपों में विद्यमान रहते हैं और ये समान शक्तिशाली अनेक दीपकों के तुल्य होते हैं। भगवान् रामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न—ये सभी विष्णुतत्त्व होने के कारण समान शक्तिशाली हैं। देवताओं के प्रार्थना करने पर ये महाराज दशरथ के पुत्र बने।

तस्यानुचरितं राजनृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।

श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापतेर्मुहुः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

तस्य—भगवान् रामचन्द्र तथा उनके भाइयों का; अनुचरितम्—दिव्य कार्यकलाप; राजन्—हे राजा ( महाराज परीक्षित ); ऋषिभिः—ऋषियों द्वारा; तत्त्व-दर्शिभिः—परम सत्य को जानने वाले; श्रुतम्—सुना गया; हि—निस्सन्देह; वर्णितम्—सुन्दर ढंग से वर्णित; भूरि—अनेक; त्वया—तुम्हारे द्वारा; सीता-पतेः—सीता के पति भगवान् रामचन्द्र के; मुहुः—बारम्बार।

हे राजा परीक्षित, भगवान् रामचन्द्र के दिव्य कार्यकलापों का वर्णन उन साधु पुरुषों द्वारा किया गया है जिन्होंने सत्य का दर्शन किया है। चूँकि आप सीतापति रामचन्द्र के विषय में बारम्बार सुन चुके हैं अतएव मैं इन कार्यकलापों का वर्णन संक्षेप में ही करूँगा। कृपया सुनें।

तात्पर्य : आधुनिक राक्षस जो डाक्टरेट डिग्रीधारी होने के कारण अपने को उन्नत रूप से शिक्षित मानते हैं, उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि रामचन्द्र भगवान् न होकर सामान्य व्यक्ति हैं। किन्तु जो विद्वान हैं और आध्यात्मिक ज्ञान से युक्त हैं वे ऐसे मतों को कभी स्वीकार नहीं करेंगे। वे तो उन तत्त्वदर्शियों द्वारा प्रस्तुत किये गये भगवान् रामचन्द्र एवं उनके कार्यकलापों के वर्णनों को ही स्वीकार करेंगे जो परम

सत्य को जानते हैं। भगवद्गीता (४.३४) में भगवान् उपदेश देते हैं—

तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।

उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

“गुरु के पास जाकर सत्य सीखने का प्रयास करो। विनीत होकर उससे प्रश्न करो और उसकी सेवा करो। स्वरूपसिद्ध व्यक्ति तुम्हें ज्ञान प्रदान कर सकता है क्योंकि उसने सत्य का साक्षात्कार किया है।” तत्त्वदर्शी बने बिना कोई व्यक्ति भगवान् के कार्यकलापों का वर्णन नहीं कर सकता। अतएव कहने को तो अनेक रामायणें हैं, किन्तु उनमें से कई प्रामाणिक नहीं हैं। कभी-कभी भगवान् रामचन्द्र के कार्यकलापों का वर्णन अपनी कल्पना, चिन्तन या भौतिक भावों के आधार पर किया जाता है। किन्तु रामचन्द्रजी की विलक्षणताओं को काल्पनिक मानकर उनका वर्णन नहीं करना चाहिए। भगवान् रामचन्द्र की कथा का वर्णन करते समय शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित को बतलाया, “आपने भगवान् रामचन्द्र के कार्यकलापों के विषय में पहले से सुन रखा है।” अतएव स्पष्ट है कि पाँच हजार वर्ष पूर्व भी रामचन्द्र की अनेक कथाएँ या रामायणें थीं और अब भी अनेक हैं। किन्तु हमें केवल तत्त्वदर्शियों द्वारा लिखित कथाओं को चुनना चाहिए (ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः)। ऐसे तथाकथित पंडितों की किताबों को नहीं जो डाक्टरेट डिग्री के आधार पर ज्ञानी होने का दावा करते हैं। यह शुकदेव गोस्वामी द्वारा दी गई चेतावनी है। ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिनः। यद्यपि वाल्मीकि-रचित रामायण एक विशाल ग्रंथ है, किन्तु इन्हीं कार्यकलापों को शुकदेव गोस्वामी ने थोड़े से श्लोकों में सार रूप में प्रस्तुत किया है।

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः

पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम् ।

वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषारोपितभूविजृम्भ

त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

गुरु-अर्थे—अपने पिता के वचनों का पालन करने हेतु; त्यक्त-राज्यः—राजा का पद छोड़कर; व्यचरत्—घूमते रहे; अनुवनम्—एक जंगल से दूसरे जंगल में; पद्म-पद्भ्याम्—अपने चरणकमलों से; प्रियायाः—अपनी प्रिय पत्नी सीतादेवी के साथ; पाणि-स्पर्श-अक्षमाभ्याम्—जो इतने कोमल थे कि सीता की हथेलियों के स्पर्श को भी सहन नहीं कर सकते थे; मृजित-पथ-रुजः—मार्ग पर चलने से जिनकी थकावट घट जाती थी; यः—जो भगवान्; हरीन्द्र-अनुजाभ्याम्—वानर-राज हनुमान तथा अपने छोटे भाई लक्ष्मण को साथ लिए; वैरूप्यात्—कुरूप करने के कारण; शूर्पणख्याः—शूर्पणखा नामक राक्षसी का; प्रिय-विरह—अपनी पत्नी के वियोग से दुखी होकर; रुषा आरोपित-भू-विजृम्भ—क्रोध में उठी अपनी भृकुटी के हिलने से; त्रस्त—डरा हुआ; अब्धिः—समुद्र; बद्ध-

सेतु:—समुद्र के ऊपर पुल बाँधने वाला; खल-दव-दहन:—दावाग्नि की तरह रावण जैसे ईर्ष्यालु पुरुषों का वध करने वाले; कोसल-इन्द्र:—अयोध्या के राजा; अवतात्—रक्षा करने के लिए प्रसन्न हों; न:—हमारी।

अपने पिता के वचनों को अक्षत रखने के लिए भगवान् रामचन्द्र ने तुरन्त ही राजपद छोड़ दिया और अपनी पत्नी सीतादेवी के साथ एक जंगल से दूसरे जंगल में अपने उन चरणकमलों से घूमते रहे जो इतने कोमल थे कि वे सीता की हथेलियों का स्पर्श भी सहन नहीं कर सकते थे। भगवान् के साथ उनके अनुज लक्ष्मण तथा वानरों के राजा हनुमान ( या एक अन्य वानर सुग्रीव ) भी थे। ये दोनों जंगल में घूमते हुए राम-लक्ष्मण की थकान मिटाने में सहायक बने। शूर्पणखा की नाक तथा कान काटकर उसे कुरूप बनाकर भगवान् सीतादेवी से बिछुड़ गये। अतएव वे अपनी भौहें तानकर क्रुद्ध हुए और सागर को डराया जिसने भगवान् को अपने ऊपर से होकर पुल बनाने की अनुमति दे दी। तत्पश्चात् भगवान् रावण को मारने के लिए दावानल की भाँति उसके राज्य में प्रविष्ट हुए। ऐसे भगवान् रामचन्द्र हम सबों की रक्षा करें।

विश्वामित्राध्वरे येन मारीचाद्या निशाचराः ।

पश्यतो लक्ष्मणस्यैव हता नैर्ऋतपुङ्गवाः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

विश्वामित्र-अध्वरे—ऋषि विश्वामित्र की यज्ञशाला में; येन—जिसके ( रामचन्द्रजी ) द्वारा; मारीच-आद्या:—मारीच इत्यादि; निशा-चरा:—अज्ञान के अंधकार में रात में घूमने वाले असभ्य व्यक्ति; पश्यत: लक्ष्मणस्य—लक्ष्मण द्वारा देखे जाकर; एव—निस्सन्देह; हता:—मारे गये; नैर्ऋत-पुङ्गवा:—राक्षसों के बड़े-बड़े सरदार।

अयोध्यानरेश भगवान् रामचन्द्र ने विश्वामित्र द्वारा सम्पन्न किये गए यज्ञ के क्षेत्र में अनेक राक्षसों तथा असभ्य पुरुषों का वध किया जो तमोगुण से प्रभावित होकर रात में विचरण करते थे। ऐसे रामचन्द्र जिन्होंने लक्ष्मण की उपस्थिति में इन असुरों का वध किया हमारी रक्षा करने की कृपा करें।

यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रं

सीतास्वयंवरगृहे त्रिशतोपनीतम् ।

आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं

सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये ॥ ६ ॥

जित्वानुरूपगुणाशीलवयोऽङ्गरूपां

सीताभिधां श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम् ।

मार्गे व्रजन्भृगुपतेर्व्यनयत्प्ररूढं

दर्पं महीमकृत यस्त्रिरराजबीजाम् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

यः—जो रामचन्द्र; लोक-वीर-समितौ—समाज में या इस संसार के अनेक वीरों के मध्य; धनुः—धनुष; ऐशम्—शिवजी का; अग्रम्—अत्यन्त कठिन; सीता-स्वयंवर-गृहे—उस सभाभवन में जहाँ सीतादेवी अपना पति चुनने के लिए खड़ी थीं; त्रिशत-उपनीतम्—तीन सौ आदमियों द्वारा उठाकर लाया गया धनुष; आदाय—लेकर; बाल-गज-लीलः—गन्ने के जंगल में हाथी के बच्चे की भाँति कार्य करते हुए; इव—सदृश; इक्षु-यष्टिम्—गन्ने का खण्ड; सज्ज्यी-कृतम्—धनुष की डोरी चढ़ा दी; नृप—हे राजा; विकृष्य—झुकाकर; बभञ्ज—तोड़ डाला; मध्ये—बीच से; जित्वा—जीतकर; अनुरूप—अपने पद तथा सौन्दर्य के अनुकूल; गुण—गुण; शील—आचरण; वयः—उम्र; अङ्ग—शरीर; रूपाम्—सौन्दर्य; सीता-अभिधाम्—सीता नामक; श्रियम्—लक्ष्मी को; उरसि—वक्षस्थल पर; अभिलब्धमानाम्—सदैव रहती हैं; मार्गे—पथ पर; ब्रजन्—जाते हुए; भृगुपतेः—भृगुपति का; व्यनयत्—विनष्ट किया; प्ररूढम्—अत्यन्त गहरा; दर्पम्—घमंड; महीम्—पृथ्वी को; अकृत—विनष्ट; यः—जिसने; त्रिः—( सात गुणित ) तीन बार; अराज—राज्यविहीन; बीजाम्—बीज ।

हे राजन्, भगवान् रामचन्द्र की लीलाएँ हाथी के बच्चे के समान अत्यन्त अद्भुत थीं। उस सभाभवन में जिसमें सीतादेवी को अपने पति का चुनाव करना था, उन्होंने इस संसार के वीरों के बीच भगवान् शिव के धनुष को तोड़ दिया। यह धनुष इतना भारी था कि इसे तीन सौ व्यक्ति उठाकर लाए थे लेकिन भगवान् रामचन्द्र ने इसे मोड़कर डोरी चढ़ाई और बीच से उसे वैसे ही तोड़ डाला जिस तरह हाथी का बच्चा गन्ने को तोड़ देता है। इस तरह भगवान् ने सीतादेवी का पाणिग्रहण किया जो उन्हीं के समान दिव्य रूप, सौन्दर्य, आचरण, आयु तथा स्वभाव से युक्त थीं। निस्सन्देह, वे भगवान् के वक्षस्थल पर सतत विद्यमान लक्ष्मी थीं। प्रतियोगियों की सभा में से उसे जीतकर उस के मायके से लौटते हुए भगवान् रामचन्द्र को परशुराम मिले। यद्यपि परशुराम अत्यन्त घमंडी थे क्योंकि उन्होंने इस पृथ्वी को इक्कीस बार राजाओं से विहीन बनाया था, किन्तु वे क्षत्रियवंशी राजा भगवान् राम से पराजित हो गये।

यः सत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशं

स्त्रैणस्य चापि शिरसा जगृहे सभार्यः ।

राज्यं श्रियं प्रणयिनः सुहृदो निवासं

त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसङ्गः ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

यः—जो रामचन्द्र; सत्य-पाश-परिवीत-पितुः—अपने पिता का जो अपनी पत्नी को दिये गये वचन से बँधे थे; निदेशम्—आदेश; स्त्रैणस्य—स्त्री-अनुरक्त; च—भी; अपि—निस्सन्देह; शिरसा—सिर पर; जगृहे—स्वीकार किया; स-भार्यः—अपनी पत्नी सहित; राज्यम्—राज्य; श्रियम्—ऐश्वर्य; प्रणयिनः—सम्बन्धीजन; सुहृदः—मित्रगण; निवासम्—निवास; त्यक्त्वा—त्यागकर; ययौ—चले गये; वनम्—वन को; असून्—प्राण; इव—सदृश; मुक्त-सङ्गः—मुक्त जीव ।

अपनी पत्नी के वचनों से बँधे पिता का आदेश पालन करते हुए भगवान् रामचन्द्र ने उसी तरह

अपना राज्य, ऐश्वर्य, मित्र, शुभचिन्तक, निवास तथा अन्य सर्वस्व त्याग दिया जिस तरह मुक्तात्मा अपना जीवन त्याग देता है। तब वे सीता सहित जंगल में चले गये।

तात्पर्य : महाराज दशरथ के तीन पत्नियाँ थीं। इनमें से कैकेयी ने उनको अपनी सेवाओं से प्रसन्न कर लिया था अतएव उन्होंने उसे वर देना चाहा था। किन्तु कैकेयी ने कहा था कि उपयुक्त अवसर पर वह माँग लेगी। फलतः रामचन्द्रजी के राजतिलक के अवसर पर कैकेयी ने अपने पति से प्रार्थना की कि वे उसके पुत्र भरत को राजगद्दी और रामचन्द्र को वनवास दे दें। वचनबद्ध होने के कारण महाराज दशरथ ने अपनी प्रियतमा के कहने पर रामचन्द्र को जंगल जाने का आदेश दे दिया और भगवान् ने आज्ञाकारी पुत्र के रूप में तुरन्त ही आदेश मान लिया। उन्होंने बिना किसी संकोच के अपना सर्वस्व त्याग दिया जिस प्रकार कोई मुक्तात्मा या महान् योगी बिना किसी भौतिक आकर्षण के अपना जीवन त्याग देता है।

रक्षःस्वसुर्व्यकृत रूपमशुद्धबुद्धे-

स्तस्याः खरत्रिशिरदूषणमुख्यबन्धून् ।

जघ्ने चतुर्दशसहस्रमपारणीय-

कोदण्डपाणिरटमान उवास कृच्छ्रम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

रक्षः-स्वसुः—राक्षस ( रावण ) की बहन, शूर्पणखा के; व्यकृत—( राम द्वारा ) कुरूप किये जाने पर; रूपम्—स्वरूप, मुख; अशुद्ध-बुद्धेः—क्योंकि कामवासना के कारण उसकी बुद्धि दूषित हो चुकी थी; तस्याः—उसके; खर-त्रिशिर-दूषण-मुख्य-बन्धून्—खर, त्रिशिर, दूषण इत्यादि अनेक दोस्तों को; जघ्ने—( भगवान् राम ने ) मारा; चतुर्दश-सहस्रम्—चौदह हजार; अपारणीय—अकल्पनीय; कोदण्ड—धनुष-बाण; पाणिः—अपने हाथ में; अटमानः—जंगल में घूमते हुए; उवास—वहाँ निवास किया; कृच्छ्रम्—बड़ी कठिनाई से।

जंगल में घूमते हुए, वहाँ पर अनेक कठिनाइयों को झेलते तथा अपने हाथ में महान् धनुष-बाण लिए भगवान् रामचन्द्र ने कामवासना से दूषित रावण की बहन के नाक-कान काटकर उसे कुरूप कर दिया। उन्होंने उसके चौदह हजार मित्रों को भी मार डाला जिनमें खर, त्रिशिर तथा दूषण मुख्य थे।

सीताकथाश्रवणदीपितहृच्छयेन

सृष्टं विलोक्य नृपते दशकन्धरेण ।

जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाश्रमतोऽपकृष्टो

मारीचमाशु विशिखेन यथा कमुग्रः ॥ १० ॥

## शब्दार्थ

सीता-कथा—सीता के विषय में बातें; श्रवण—सुनकर; दीपित—उत्तेजित; हृत्-शयेन—रावण के मन की कामवासना द्वारा; सृष्टम्—उत्पन्न; विलोक्य—देखकर; नृपते—हे राजा परीक्षित; दश-कन्धरेण—दस सिरों वाले रावण द्वारा; जघ्ने—भगवान् राम ने मारा; अद्भुत-एण-वपुषा—सोने के मृग द्वारा; आश्रमतः—अपने आश्रम से; अपकृष्टः—दूर भटकाकर; मारीचम्—असुर मारीच को जिसने सोने के मृग का रूप धारण किया था; आशु—तुरन्त; विशिखेन—तीक्ष्ण बाण से; यथा—जिस तरह; कम्—दक्ष को; उग्रः—शिवजी ने।

हे परीक्षित, जब दस शिरों वाले रावण ने सीता के सुन्दर एवं आकर्षक स्वरूप के विषय में सुना तो उसका मन कामवासनाओं से उत्तेजित हो उठा और वह उनको हरने गया। रावण ने भगवान् रामचन्द्र को उनके आश्रम से दूर ले जाने के लिए सोने के मृग का रूप धारण किये मारीच को भेजा और जब भगवान् ने उस अद्भुत मृग को देखा तो उन्होंने अपना आश्रम छोड़कर उसका पीछा करना शुरू कर दिया। अन्त में उसे तीक्ष्ण बाण से उसी तरह मार डाला जिस तरह शिवजी ने दक्ष को मारा था।

रक्षोऽधमेन वृकवद्विपिनेऽसमक्षं

वैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम् ।

भ्रात्रा वने कृपणवत्प्रियया वियुक्तः

स्त्रीसङ्गिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार ॥ ११ ॥

## शब्दार्थ

रक्षः-अधमेन—अत्यन्त दुष्ट राक्षस रावण द्वारा; वृक-वत्—बाघ के समान; विपिने—जंगल में; असमक्षम्—असुरक्षित; वैदेह-राज-दुहितरि—विदेह राजा की पुत्री सीतादेवी की इस दशा के द्वारा; अपयापितायाम्—अपहरण करके; भ्रात्रा—अपने भाई के साथ; वने—जंगल में; कृपण-वत्—अत्यन्त सताये दीन व्यक्ति की तरह; प्रियया—अपनी प्रियतमा के द्वारा; वियुक्तः—विलग हुआ; स्त्री-सङ्गिनाम्—स्त्रियों में अनुरक्त पुरुषों का; गतिम्—गन्तव्य; इति—इस प्रकार; प्रथयन्—उदाहरण प्रस्तुत करते हुए; चचार—घूमने लगा।

जब रामचन्द्रजी जंगल में प्रविष्ट हुए और लक्ष्मण भी वहाँ नहीं थे तो दुष्ट राक्षस रावण ने विदेह राजा की पुत्री सीतादेवी का उसी तरह अपहरण कर लिया जिस तरह गडरिये की अनुपस्थिति में बाघ किसी असुरक्षित भेड़ को पकड़ लेता है। तब श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मण के साथ जंगल में इस तरह घूमने लगे मानो कोई अत्यन्त दीन व्यक्ति अपनी पत्नी के वियोग में घूम रहा हो। इस तरह उन्होंने अपने व्यक्तिगत उदाहरण से एक स्त्री-अनुरक्त पुरुष जैसी दशा प्रदर्शित की।

तात्पर्य : इस श्लोक में स्त्री-सङ्गिनाम् गतिमिति शब्द बतलाते हैं कि भगवान् ने स्त्री-अनुरक्त व्यक्ति की सी दशा प्रदर्शित की। नैतिक उपदेशों के अनुसार—गृहे नारीं विवर्जयेत्—जब कोई यात्रा पर जाय तो अपनी



पत्नी साथ में न ले जाय। पुराने जमाने में लोग बिना सवारी के यात्रा करते थे लेकिन फिर भी जहाँ तक सम्भव हो जब कोई घर से बाहर जाए तो अपने साथ अपनी पत्नी न ले जाये, विशेष रूप से ऐसी स्थिति में जिसमें श्रीरामचन्द्रजी थे जब उन्हें उनके पिता द्वारा वनवास दे दिया गया था। कोई जंगलों में रहे या घर में रहे, स्त्री-अनुरक्ति आफत बन जाती है जैसा कि भगवान् ने अपने निजी दृष्टान्त से दिखला दिया है।

निस्सन्देह, यह स्त्रीसंगी का भौतिक पक्ष है लेकिन भगवान् की स्थिति आध्यात्मिक है क्योंकि वे भौतिक जगत के प्राणी नहीं हैं। नारायणः परोऽव्यक्तात्—नारायण भौतिक सृष्टि से परे हैं। चूँकि वे भौतिक जगत के स्रष्टा हैं अतएव उन्हें भौतिक जगत की दशाएँ नहीं सतातीं। सामान्यतया सीता से रामचन्द्र का वियोग विप्रलम्भ माना जाता है, जो भगवान् की ह्लादिनी शक्ति की क्रिया है जिसका सम्बन्ध शृंगार रस से है। आध्यात्मिक जगत में भगवान् में सारे प्रेम-व्यापार देखने को मिलते हैं—उनमें सात्त्विक, संचारी, विलाप, मूर्च्छा तथा उन्माद सभी अवस्थाओं के लक्षण प्रकट होते हैं। अतएव जब रामचन्द्रजी सीता से वियुक्त हुए तो ये सारे आध्यात्मिक लक्षण प्रकट हुए। भगवान् न तो निराकार हैं, न शक्तिहीन। प्रत्युत वे सच्चिदानन्द विग्रह हैं। अतएव उनमें आध्यात्मिक आनन्द के सारे लक्षण पाये जाते हैं। अपनी प्रियतमा से वियोग का अनुभव भी आध्यात्मिक आनन्द ही है। जैसा कि श्रील स्वरूप दामोदर गोस्वामी ने बतलाया है—*राधाकृष्ण प्रणय विकृतिह्लादिनीशक्तिः*—राधाकृष्ण के प्रेम-व्यापार भगवान् की ह्लादिनी शक्ति के रूप में प्रदर्शित किये जाते हैं। भगवान् सारे आनन्द के मूल स्रोत हैं, वे आनन्द के आगार हैं। अतएव भगवान् रामचन्द्र ने आध्यात्मिक तथा भौतिक दोनों ही प्रकार से सत्य का प्रदर्शन किया। भौतिक दृष्टि से जो लोग स्त्री से अनुरक्त हैं उन्हें कष्ट मिलता है, किन्तु आध्यात्मिक रूप से जब भगवान् तथा उनकी ह्लादिनी शक्ति में वियोग भाव उत्पन्न होता है तो भगवान् का आनन्द बढ़ जाता है। इसकी आगे भी व्याख्या *भगवद्गीता* (९.११) में हुई है—

*अवजानन्ति मां मूढाः मानुषीं तनुमाश्रितम्।*

*परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥*

जो व्यक्ति भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति को नहीं जानता वह उन्हें सामान्य मानव प्राणी मानता है लेकिन भगवान् के मन, बुद्धि तथा इन्द्रियाँ कभी भी भौतिकता से प्रभावित नहीं होतीं। *स्कन्द पुराण* में

इसकी विशद व्याख्या मिलती है, जिसका संदर्भ मध्वाचार्य ने दिया है—

नित्यपूर्णसुखज्ञानस्वरूपोऽसौ यतो विभुः ।

अतोऽस्य राम इत्याख्या तस्य दुःखं कुतोऽण्वपि ॥

तथापि लोकशिक्षार्थमदुःखो दुःखवर्तित्वत् ।

अन्तर्हितां लोकदृष्ट्या सीतामासीत् स्मरन्निव ॥

ज्ञापनार्थं पुनर्नित्यसम्बन्धः स्वात्मनः श्रियाः ।

अयोध्याया विनिर्गच्छन् सर्वलोकस्य चेश्वरः ।

प्रत्यक्षं तु श्रिया सार्धं जगामानादिरव्ययः ॥

नक्षत्रमासगणितं त्रयोदशसहस्रकम् ।

ब्रह्मलोकसमं चक्रे समस्तं क्षितिमंडलम् ॥

रामो रामो रामेति सर्वेषाम् अभवत् तदा ।

सर्वोरममयो लोको यदा रामस्त्वयपालयत् ॥

वस्तुतः रावण द्वारा सीता का अपहरण असम्भव था। रावण द्वारा हरी गई सीता *मायासीता* थीं— सीतादेवी का भ्रामक स्वरूप। जब सीता की अग्नि-परीक्षा हुई तो यह मायासीता भस्म हो गई और असली सीता अग्नि से बाहर आ गई।

इस उदाहरण से एक दूसरी शिक्षा यह मिलती है कि इस जगत में कोई स्त्री कितनी ही बलवती क्यों न हो, उसको संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए अन्यथा असुरक्षित होने पर उसे रावण जैसा राक्षस भगा ले जायेगा। इस श्लोक में आगत *वैदेहराजदुहितरि* शब्द सूचित करते हैं कि भगवान् रामचन्द्र से व्याहे जाने के पूर्व सीता जी अपने पिता वैदेहराज द्वारा सुरक्षित थीं और विवाह हो जाने पर उन्हें अपने पति का संरक्षण प्राप्त था। अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्त्री की सुरक्षा सदैव होनी ही चाहिए। वैदिक नियमानुसार स्त्री के स्वतंत्र ( *असमक्षम्* ) होने की सम्भावना नहीं है क्योंकि वह स्वतंत्र रूप से अपनी रक्षा नहीं कर सकती।

दग्ध्वात्मकृत्यहतकृत्यमहन्कबन्धं

सख्यं विधाय कपिभिर्दयितागतिं तैः ।

बुद्ध्वाथ वालिनि हते प्लवगेन्द्रसैन्यै-

वेलामगात्स मनुजोऽजभवार्चिताङ्घ्रिः ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

दग्ध्वा—जलाकर; आत्म-कृत्य-हत-कृत्यम्—अपने आत्मीय जटायु का दाहसंस्कार करने के बाद जो भगवान् के निमित्त मरा; अहन्—मारा; कबन्धम्—कबन्ध नामक असुर को; सख्यम्—दोस्ती, मैत्री; विधाय—करके; कपिभिः—वानर प्रधानों से; दयिता-गतिम्—सीता के उद्धार का प्रबन्ध; तैः—उनके द्वारा; बुद्ध्वा—जान करके; अथ—तत्पश्चात्; वालिनि हते—वालिक का वध हो जाने पर; प्लवग-इन्द्र-सैन्यैः—वानर सैनिकों की सहायता से; वेलाम्—समुद्र तट पर; अगात्—गये; सः—वह, रामचन्द्रजी; मनु-जः—मनुष्य रूप में; अज—ब्रह्मा द्वारा; भव—तथा शिवजी द्वारा; अर्चित-अङ्घ्रिः—जिनके चरणकमल पूजित हैं।

भगवान् रामचन्द्रजी ने, जिनके चरणकमल ब्रह्माजी तथा शिवजी द्वारा पूजित हैं, मनुष्य का रूप धारण किया था। अतएव उन्होंने जटायु का दाहसंस्कार किया, जिसे रावण ने मारा था। तत्पश्चात् भगवान् ने कबन्ध नामक असुर को मारा और वानरराजों से मैत्री स्थापित करके बालिक का वध किया तथा सीतादेवी के उद्धार की व्यवस्था करके वे समुद्र के तट पर गये।

तात्पर्य : जब रावण ने सीता का अपहरण किया तो मार्ग में पक्षिराज जटायु ने उसको रोका, किन्तु शक्तिशाली रावण ने युद्ध में जटायु को परास्त कर दिया और उसका पंख काट दिया। जब रामचन्द्रजी सीता की खोज कर रहे थे तो जटायु उन्हें मरणासन्न अवस्था में मिला जिसने जानकारी दी कि सीताजी को रावण ले गया है। जब जटायु मर गया तो रामचन्द्रजी ने दाहसंस्कार करके पुत्र का कर्तव्य निभाया और तब सीता का उद्धार करने के उद्देश्य से वानरों को अपना मित्र बनाया।

यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपात-

सम्भ्रान्तनक्रमकरो भयगीर्णघोषः ।

सिन्धुः शिरस्यर्हणं परिगृह्य रूपी

पादारविन्दमुपगम्य बभाष एतत् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

यत्-रोष—जिसका क्रोध; विभ्रम—प्रेरित; विवृत्त—बदल गया; कटाक्ष-पात—दृष्टिपात से; सम्भ्रान्त—विक्षुब्ध; नक्र—घड़ियाल; मकरः—तथा मगर; भय-गीर्ण-घोषः—जिसकी गम्भीर गर्जना भय से दब गयी; सिन्धुः—सागर; शिरसि—सिर पर; अर्हणम्—भगवान् की पूजा की सारी सामग्री; परिगृह्य—ले जाकर; रूपी—रूप धारण करके; पाद-अरविन्दम्—भगवान् के चरणकमलों में; उपगम्य—पहुँच कर; बभाष—कहा; एतत्—यह ( निम्नलिखित )।

समुद्र तट पर पहुँच कर भगवान् रामचन्द्र ने तीन दिन तक उपवास किया और वे साक्षात् समुद्र के आने की प्रतीक्षा करते रहे। जब समुद्र नहीं आया तो भगवान् ने अपनी क्रोध लीला प्रकट की

और समुद्र पर दृष्टिपात करते ही समुद्र के सारे प्राणी, जिनमें घड़ियाल तथा मगर सम्मिलित थे, भय के मारे उद्विग्न हो उठे। तब शरीर धारण करके डरता हुआ समुद्र पूजा की सारी सामग्री लेकर भगवान् के पास पहुँचा। उसने भगवान् के चरणकमलों पर गिरते हुए इस प्रकार कहा।

न त्वां वयं जडधियो नु विदाम भूमन्  
 कूटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशम् ।  
 यत्सत्त्वतः सुरगणा रजसः प्रजेशा  
 मन्योश्च भूतपतयः स भवान्गुणेशः ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; त्वाम्—तुमको, भगवान् को; वयम्—हम; जड-धियः—मन्द बुद्धि वाले; नु—निस्सन्देह; विदामः—जानते हैं; भूमन्—हे श्रेष्ठ; कूट-स्थम्—हृदय के भीतर; आदि-पुरुषम्—आदि भगवान् को; जगताम्—जगतों के; अधीशम्—सर्वोच्च स्वामी को; यत्—आपके निर्देशानुसार; सत्त्वतः—सत्त्वगुण से; सुर-गणाः—ऐसे देवता; रजसः—रजोगुण से; प्रजा-ईशाः—प्रजापति; मन्योः—तमोगुण से प्रभावित; च—तथा; भूत-पतयः—भूतों के शासक; सः—ऐसा पुरुष; भवान्—आप; गुण-ईशः—तीनों गुणों के स्वामी।

हे सर्वव्यापी परम पुरुष, हम लोग मन्द बुद्धि होने के कारण यह नहीं जान पाये कि आप कौन हैं, किन्तु अब हम जान पाये हैं कि आप सारे ब्रह्माण्ड के स्वामी, अक्षर तथा आदि परम पुरुष हैं। देवता लोग सतोगुण से, प्रजापति रजोगुण से तथा भूतों के ईश तमोगुण द्वारा अन्धे हो जाते हैं, किन्तु आप इन समस्त गुणों के स्वामी हैं।

तात्पर्य : जड-धियः शब्द पशु-बुद्धि का सूचक है। ऐसी बुद्धि वाला व्यक्ति भगवान् को नहीं समझ सकता। पशु बिना मार खाये मनुष्य के अभिप्राय को नहीं समझ सकता। इसी प्रकार जो जडबुद्धि हैं वे भगवान् को नहीं समझ पाते, किन्तु तीनों गुणों के द्वारा बुरी तरह प्रताड़ित होने पर वे भगवान् को समझने लगते हैं। किसी हिन्दी कवि का कथन है—

दुख में सब हरि भजे सुख में भजे न कोइ।

सुख में जो हरि भजे दुख काहे को होइ ॥

दुखी होने पर वह मन्दिर या गिरजाघर में भगवान् को पूजने जाता है, किन्तु ऐश्वर्यवान होने पर भगवान् को भूल जाता है। अतएव भौतिक प्रकृति द्वारा मानव समाज को दण्डित करना भगवान् के लिए अनिवार्य है क्योंकि इसके बिना मनुष्य अपनी मन्द बुद्धि के कारण भगवान् की श्रेष्ठता को भूल जाते हैं।

कामं प्रयाहि जहि विश्रवसोऽवमेहं  
 त्रैलोक्यरावणमवाप्नुहि वीर पत्नीम् ।  
 बध्नीहि सेतुमिह ते यशसो वितत्यै  
 गायन्ति दिग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

कामम्—इच्छानुसार; प्रयाहि—मेरे जल के ऊपर से होकर चले जायें; जहि—विजय प्राप्त करें; विश्रवसः—विश्रवा मुनि का; अवमेहम्—मूत्र जैसा प्रदूषण; त्रैलोक्य—तीनों जगत्‌ओं के लिए; रावणम्—रावण जैसा व्यक्ति, जो रोदन का कारण है; अवाप्नुहि—फिर से प्राप्त करें; वीर—हे वीर पुरुष; पत्नीम्—अपनी पत्नी को; बध्नीहि—तैयार करो, बाँधो; सेतुम्—पुल; इह—यहाँ ( इस जल में ); ते—आपका; यशसः—यश; वितत्यै—विस्तार करने के लिए; गायन्ति—महिमा का गान करेंगे; दिक्-विजयिनः—सारी दिशाओं को जीतने वाले बड़े-बड़े योद्धा; यम्—जिसके ( पुल के ); उपेत्य—निकट आकर; भूपाः—बड़े-बड़े राजा ।

हे प्रभु, आप इच्छानुसार मेरे जल का उपयोग कर सकते हैं। निस्सन्देह, आप इसे पार करके उस रावण की पुरी में जा सकते हैं जो उपद्रवी है और तीनों जगत्‌ओं को रुलाने वाला है। वह विश्रवा का पुत्र है, किन्तु मूत्र के समान तिरस्कृत है। कृपया जाकर उसका वध करें और अपनी पत्नी सीतादेवी को फिर से प्राप्त करें। हे महान् वीर, यद्यपि मेरे जल के कारण आपको लंका जाने में कोई बाधा नहीं होगी लेकिन आप इसके ऊपर पुल बनाकर अपने दिव्य यश का विस्तार करें। आपके इस अद्भुत असामान्य कार्य को देखकर भविष्य में सारे महान् योद्धा तथा राजा आपकी महिमा का गान करेंगे।

तात्पर्य : कहा जाता है कि पुत्र तथा मूत्र एक ही स्रोत—जननेन्द्रिय से निकलते हैं। जब पुत्र भगवद्भक्त या बड़ा विद्वान् होता है तो पुत्रजन्म के लिए वीर्य-स्खलन सार्थक होता है, किन्तु यदि वह अयोग्य हुआ और अपने कुल का नाम रोशन नहीं करता तो वह मूत्र के ही तुल्य व्यर्थ होता है। यहाँ पर रावण की उपमा मूत्र से दी गई है क्योंकि वह तीनों लोकों में उपद्रव कराने वाला था। इस तरह देहधारी समुद्र ने इच्छा व्यक्त की कि भगवान् उसको मारें।

भगवान् रामचन्द्र का एक गुण है उनकी सर्वशक्तिमत्ता। भगवान् चाहें तो भौतिक अवरोधों या असुविधाओं की परवाह न करते हुए कर्म करें, किन्तु यह सिद्ध करने के लिए कि वे ईश्वर हैं और ईश्वर के तौर पर मात्र विज्ञापित नहीं हुए थे या जनादेश पर निर्वाचित नहीं हुए थे, उन्होंने समुद्र के ऊपर एक अद्भुत पुल का निर्माण कराया। आजकल किसी ऐसे कृत्रिम ईश्वर को खड़ा करने का फैशन बन चुका है जो कोई असामान्य कार्य नहीं कर सकता। मूर्ख व्यक्ति थोड़े से जादू से ही चमत्कृत होकर कृत्रिम ईश्वर चुन बैठता है क्योंकि वह यह नहीं जानता कि ईश्वर कितना शक्तिशाली होता है। किन्तु भगवान् रामचन्द्र ने पत्थरों को

तैराकर समुद्र पर पत्थर का पुल बनवाया। यह प्रमाण है ईश्वर की असाधारण अद्भुत शक्ति का। ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो सामान्य व्यक्ति के द्वारा न सम्पन्न हो सकने वाले असामान्य कार्य को करके अपनी असाधारण शक्ति प्रदर्शित न कर दे उसे ईश्वर क्यों माना जाय? हम रामचन्द्रजी को भगवान् इसलिए मानते हैं क्योंकि उन्होंने पुल बनाया और श्रीकृष्ण को भगवान् इसलिए मानते हैं क्योंकि उन्होंने सात वर्ष की आयु में ही गोवर्धन पर्वत उठा लिया था। हमें जिस किसी धूर्त को ईश्वर या ईश्वर का अवतार नहीं मान लेना चाहिए क्योंकि ईश्वर अपने विविध कार्यकलापों में विशिष्ट विलक्षणताएँ प्रकट करता है। अतएव भगवान् स्वयं ही भगवद्गीता (४.९) में कहते हैं—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

“हे अर्जुन! जो व्यक्ति मेरे जन्म तथा कर्म की दिव्य प्रकृति को जानता है वह इस शरीर को त्यागने के बाद फिर से इस जगत में जन्म नहीं लेता अपितु मेरे नित्यधाम को प्राप्त होता है।” भगवान् के कार्यकलाप सामान्य नहीं होते—वे दिव्य रूप से अद्भुत होते हैं और अन्य किसी जीवधारी द्वारा सम्पन्न नहीं किये जा सकते। भगवान् के कार्यकलापों के सारे लक्षण शास्त्रों में वर्णित हैं और उन्हें समझने के बाद ही भगवान् को यथारूप में ग्रहण किया जा सकता है।

बद्ध्वोदधौ रघुपतिर्विविधाद्रिकूटैः

सेतुं कपीन्द्रकरकम्पितभूरुहाङ्गैः ।

सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकै-

र्लङ्कां विभीषणदृशाविशदग्रदग्धाम् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

बद्ध्वा—बाँधने के बाद; उदधौ—समुद्र के जल में; रघु-पतिः—भगवान् रामचन्द्र ने; विविध—अनेक प्रकार की; अद्रि-कूटैः—पर्वतों की चोटियों से; सेतुम्—पुल; कपि-इन्द्र—शक्तिशाली बन्दरों के; कर-कम्पित—हाथों से हिलाये गये; भूरुह-अङ्गैः—वृक्षों से; सुग्रीव—सुग्रीव; नील—नील; हनुमत्—हनुमान; प्रमुखैः—इत्यादि; अनीकैः—ऐसे सैनिकों सहित; लङ्काम्—रावण के राज्य लंका में; विभीषण-दृशा—रावण के भाई विभीषण के निर्देश से; आविशत्—प्रवेश किया; अग्र-दग्धाम्—पहले ही (वानर सैनिक हनुमान द्वारा) जलाए गए।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जल में उन पर्वत शृंगों को फेंककर जिनके सारे वृक्ष बन्दरों द्वारा हाथ से हिलाये गये थे, समुद्र के ऊपर पुल बना चुकने के बाद भगवान् रामचन्द्र सीतादेवी को रावण के चंगुल से छुड़ाने के लिए लंका गये। रावण के भाई विभीषण की सहायता से भगवान् सुग्रीव,

नील, हनुमान इत्यादि वानर सैनिकों के साथ रावण के राज्य लंका में प्रविष्ट हुए जिसे हनुमान ने पहले ही भस्म कर दिया था।

तात्पर्य : बन्दर सैनिकों ने वृक्षों से ढके बड़े-बड़े पर्वतशृंगों को लाकर समुद्र में फेंका जो ईश्वर की परम इच्छा से तैरने लगे। भगवान् की इच्छा से ही आकाश में अनेक बड़े-बड़े ग्रह रुई के फाहों के समान भारहीन बनकर तैरते हैं। तो फिर महान् पर्वतशृंगों को जल में तैरने में कौन सी कठिनाई होगी? यह भगवान् की सर्वशक्तिमत्ता है। वे जो भी चाहें कर सकते हैं क्योंकि वे भौतिक प्रकृति के अधीन नहीं हैं, प्रत्युत प्रकृति ही उनके वश में है। *मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्*—मेरे ही निर्देशानुसार प्रकृति कार्य करती है। *ब्रह्म-संहिता* में (५.५२) भी ऐसी ही जानकारी प्राप्त है—

*यस्याज्ञया भ्रमति सम्भृतकालचक्रो*

*गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि।*

प्रकृति की कार्यशैली का वर्णन करते हुए *ब्रह्म-संहिता* कहती है कि सूर्य भगवान् की इच्छा से घूमता है। अतएव भगवान् रामचन्द्र के लिए हिन्द महासागर के ऊपर उन बन्दर सैनिकों की सहायता से जो बड़े-बड़े पर्वतशृंगों को लाकर जल में फेंक रहे थे पुल बनाना तनिक भी आश्चर्यजनक नहीं है। यह केवल इसीलिए अद्भुत लगता है क्योंकि इस भगवान् रामचन्द्र के नाम तथा यश को अमरत्व प्रदान किया है।

सा वानरेन्द्रबलरुद्धविहारकोष्ठ-

श्रीद्वारगोपुरसदोवलभीविटङ्का ।

निर्भज्यमानधिषणध्वजहेमकुम्भ-

शृङ्गाटका गजकुलैर्हृदिनीव घूर्णा ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

सा—वह लंका नगरी; वानर-इन्द्र—वानरों के बड़े-बड़े सेनापतियों के; बल—बल से; रुद्ध—घिरी हुई; विहार—क्रीड़ा स्थल; कोष्ठ—कोठार, अन्न के गोदामों; श्री—खजाने; द्वार—महलों के दरवाजे; गोपुर—नगरी के फाटक; सदः—सभाभवन; वलभी—बड़े-बड़े महलों के अग्रभाग, छज्जे; विटङ्का—कबूतरखाने; निर्भज्यमान—तोड़े जाने वाले; धिषण—चबूतरे; ध्वज—झंडे, पताकाएँ; हेम-कुम्भ—सोने के गुम्बद; शृङ्गाटका—तथा चौराहे; गज-कुलैः—हाथी के झुंडों से; हृदिनी—नदी; इव—सदृश; घूर्णा—क्षुब्ध, मथी हुई।

लंका में प्रवेश करने के बाद सुग्रीव, नील, हनुमान आदि वानर सेनापतियों के नेतृत्व में वानर सैनिकों ने सारे विहारस्थलों, अन्न के गोदामों, खजानों, महलों के द्वारों, नगर के फाटकों, सभाभवनों, महल के छज्जों और यहाँ तक कि कबूतरघरों में अधिकार कर लिया। जब नगरी के सारे

चौराहे, चबूतरे, झंडे तथा गुम्बदों पर रखे सुनहरे गमले ध्वस्त कर दिये गये तो समूची लंका नगरी उस नदी के सदृश प्रतीत हो रही थी जिसे हाथियों के झुंड ने मथ दिया हो।

रक्षःपतिस्तदवलोक्य निकुम्भकुम्भ-  
धूम्राक्षदुर्मुखसुरान्तकनरान्तकादीन् ।  
पुत्रं प्रहस्तमतिकायविकम्पनादीन्  
सर्वानुगान्समहिनोदथ कुम्भकर्णम् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

रक्षः-पतिः—राक्षसों का स्वामी, रावण; तत्—ऐसे उपद्रव को; अवलोक्य—देखकर; निकुम्भ—निकुम्भ; कुम्भ—कुम्भ; धूम्राक्ष—धूम्राक्ष; दुर्मुख—दुर्मुख; सुरान्तक—सुरान्तक; नरान्तक—नरान्तक; आदीन्—इत्यादि को; पुत्रम्—अपने बेटे इन्द्रजित को; प्रहस्तम्—प्रहस्त को; अतिकाय—अतिकाय; विकम्पन—विकम्पन; आदीन्—आदि को; सर्व-अनुगान्—अपने सारे अनुयायियों को; समहिनोत्—आज्ञा दी ( शत्रुओं से लड़ने के लिए ); अथ—अन्ततः; कुम्भकर्णम्—अपने सबसे प्रसिद्ध भाई कुम्भकर्ण को।

जब राक्षसपति रावण ने वानर सैनिकों द्वारा किये जा रहे उपद्रवों को देखा तो उसने निकुम्भ, कुम्भ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, सुरान्तक, नरान्तक तथा अन्य राक्षसों एवं अपने पुत्र इन्द्रजित को भी बुलवाया। तत्पश्चात् उसने प्रहस्त, अतिकाय, विकम्पन को और अन्त में कुम्भकर्ण को बुलवाया। इसके बाद उसने अपने सारे अनुयायियों को शत्रुओं से लड़ने के लिए प्रोत्साहित किया।

तां यातुधानपृतनामसिशूलचाप-  
प्रासृष्टिशक्तिशरतोमरखड्गदुर्गाम् ।  
सुग्रीवलक्ष्मणमरुत्सुतगन्धमाद-  
नीलाङ्गदक्षपनसादिभिरन्वितोऽगात् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

ताम्—उन सब; यातुधान-पृतनाम्—राक्षसों के सैनिकों को; असि—तलवार से; शूल—भाला से; चाप—बाण से; प्रास-ऋष्टि—प्रास तथा ऋष्टि नामक हथियारों से; शक्ति-शर—शक्तिबाण; तोमर—तोमर नामक हथियार; खड्ग—तलवार की तरह के हथियार से; दुर्गाम्—दुर्जेय; सुग्रीव—सुग्रीव द्वारा; लक्ष्मण—रामचन्द्र के भाई लक्ष्मण द्वारा; मरुत्-सुत—हनुमान द्वारा; गन्धमाद—गन्धमाद नामक वानर द्वारा; नील—नील द्वारा; अङ्गद—अंगद; ऋक्ष—ऋक्ष; पनस—पनस; आदिभिः—इत्यादि के द्वारा; अन्वितः—घिरकर; अगात्—समक्ष ( लड़ने ) आया।

लक्ष्मण तथा सुग्रीव, हनुमान, गन्धमाद, नील, अंगद, जाम्बवन्त तथा पनस नामक वानर सैनिकों से घिरे हुए भगवान् रामचन्द्र ने उन राक्षस सैनिकों पर आक्रमण कर दिया जो विविध अजेय हथियारों से, यथा तलवारों, भालों, बाणों, प्रासों, ऋष्टियों, शक्तिबाणों, खड्गों तथा तोमरों से सज्जित थे।



तेऽनीकपा रघुपतेरभिपत्य सर्वे

द्वन्द्वं वरूथमिभपत्तिरथाश्वयोधैः ।

जघ्नुर्द्रुमैर्गिरिगदेषुभिरङ्गदाद्याः

सीताभिमर्षहतमङ्गलरावणेशान् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

ते—वे सब; अनीक-पा:—सैनिकों के सेनापति; रघुपते:—भगवान् रामचन्द्र के; अभिपत्य—शत्रु का पीछा करते; सर्वे—सभी; द्वन्द्वम्—लड़ते हुए; वरूथम्—रावण के सैनिकों को; इभ—हाथी; पत्ति—पैदल सेना; रथ—रथ; अश्व—घोड़े; योधै:—योद्धाओं से; जघ्नु:—उन्हें मार डाला; द्रुमै:—बड़े-बड़े वृक्षों को फेंककर; गिरि—पर्वत की चोटियों; गदा—गदा; इषुभि:—बाणों से; अङ्गद-आद्या:—अंगद इत्यादि भगवान् रामचन्द्र के सारे सैनिक; सीता—सीता देवी का; अभिमर्ष—क्रोध से; हत—ध्वस्त; मङ्गल—जिसका कल्याण; रावण-ईशान्—रावण के अनुयायियों को।

अंगद तथा रामचन्द्र के अन्य सेनापतियों ने शत्रुओं के हाथियों, पैदल सैनिकों, घोड़ों तथा रथों का सामना किया और उन पर बड़े-बड़े वृक्ष, पर्वत-शृंग, गदा तथा बाण फेंके। इस तरह श्री रामचन्द्रजी के सैनिकों ने रावण के सैनिकों को जिनका सौभाग्य पहले ही लुट चुका था, मार डाला क्योंकि सीतादेवी के क्रोध से रावण पहले ही ध्वस्त हो चुका था।

तात्पर्य : भगवान् रामचन्द्र ने जंगल में जितने सैनिकों की भरती की, वे बन्दर थे और उनके पास रावण के सैनिकों से लड़ने के लिए समुचित साज-सामान न था क्योंकि रावण के सैनिकों के पास आधुनिक युद्धास्त्र थे जब कि बन्दरों के पास फेंकने के लिए पत्थर, पर्वतशृंग तथा वृक्ष थे। केवल भगवान् रामचन्द्र और लक्ष्मण कुछ बाण चला रहे थे। किन्तु क्योंकि रावण के सैनिक माता सीता के शाप से ध्वस्त हो चुके थे अतएव सारे बन्दर उन्हें केवल पत्थर एवं वृक्ष चलाकर मारने में समर्थ हो सके। बल दो प्रकार का होता है—दैव तथा पुरुषाकार। दैवबल अध्यात्म से प्राप्त किया जाता है और पुरुषाकार बल अपनी बुद्धि तथा शक्ति से प्राप्त किया जाता है। अध्यात्म बल भौतिकतावादी बल से सदैव श्रेष्ठ होता है। भगवान् की कृपा पर अवलम्बित होकर मनुष्य को अपने शत्रु से युद्ध करना चाहिए भले ही वह आधुनिक हथियारों से युक्त क्यों न हो। इसीलिए कृष्ण ने अर्जुन को आदेश दिया—*मामनुस्मर युध्य च*—मेरा चिन्तन करके युद्ध करो। हमें शत्रु से अपनी शक्तिभर लड़ना चाहिए, किन्तु विजय पाने के लिए भगवान् पर आश्रित रहना चाहिए।

रक्षःपतिः स्वबलनष्टिमवेक्ष्य रुष्ट

आरुह्य यानकमथाभिससार रामम् ।

स्वःस्यन्दने ह्युमति मातलिनोपनीते

विभ्राजमानमहनन्निशितैः क्षुरप्रैः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

रक्षः-पतिः—राक्षसों का नायक, रावण; स्व-बल-नष्टिम्—अपने सैनिकों का विनाश; अवेक्ष्य—देखकर; रुष्टः—क्रुद्ध हुआ; आरुह्य—सवार होकर; यानकम्—अपने सुन्दर विमान में, जो पुष्पों से अलंकृत था; अथ—तत्पश्चात्; अभिससार—आगे बढ़ा; रामम्—राम की ओर; स्वः-स्यन्दने—इन्द्र के दिव्य रथ में; द्युमति—चमकता हुआ; मातलिना—इन्द्र के सारथी मातलि द्वारा; उपनीते—लाया जाकर; विभ्राजमानम्—रामचन्द्र, मानों तेज से दीप्त हों; अहनत्—रावण ने प्रहार किया; निशितैः—अत्यन्त तीक्ष्ण; क्षुरप्रैः—तीरों से।

तत्पश्चात् जब राक्षसराज रावण ने देखा कि उसके सारे सैनिक मारे जा चुके हैं तो वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। अतएव वह अपने विमान में सवार हुआ जो फूलों से सजाया हुआ था और रामचन्द्रजी की ओर बढ़ा जो इन्द्र के सारथी मातलि द्वारा लाये गये तेजस्वी रथ पर आसीन थे। तब रावण ने भगवान् रामचन्द्र पर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की।

रामस्तमाह पुरुषादपुरीष यन्नः

कान्तासमक्षमसतापहता श्रवत्ते ।

त्यक्तत्रपस्य फलमद्य जुगुप्सितस्य

यच्छामि काल इव कर्तुरलङ्घ्यवीर्यः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

रामः—भगवान् रामचन्द्र ने; तम्—उससे ( रावण से ); आह—कहा; पुरुष-अद-पुरीष—तुम मनुष्यों के भक्षकों ( राक्षसों ) के मल हो; यत्—क्योंकि; नः—मेरी; कान्ता—पत्नी; असमक्षम्—मेरी अनुपस्थिति के कारण असहाय; असता—महान् पापी तुम्हारे द्वारा; अपहता—अपहरण की गई; श्र-वत्—कुत्ते के समान, जो मालिक की अनुपस्थिति में रसोई से भोजन लेकर भाग जाता है; ते—तुम्हारा; त्यक्त-त्रपस्य—निर्लज्ज; फलम् अद्य—आज तुमको मजा चखा दूँगा; जुगुप्सितस्य—अत्यन्त नीच का; यच्छामि—तुम्हें दण्ड दूँगा; कालः इव—मृत्यु के समान; कर्तुः—सारे पापों के कर्ता तुमको; अलङ्घ्य-वीर्यः—किन्तु मैं सर्वशक्तिमान होने के कारण कभी अपने प्रयास में विफल नहीं होता।

भगवान् रामचन्द्र ने रावण से कहा : तुम मानवभक्षियों में अत्यन्त गर्हित हो। निस्सन्देह, तुम उनकी विष्टा तुल्य हो। तुम कुत्ते के समान हो क्योंकि वह घर के मालिक के न होने पर रसोई से खाने की वस्तु चुरा लेता है। तुमने मेरी अनुपस्थिति में मेरी पत्नी सीतादेवी का अपहरण किया है। इसलिए जिस तरह यमराज पापी व्यक्तियों को दण्ड देता है उसी तरह मैं भी तुम्हें दण्ड दूँगा। तुम अत्यन्त नीच, पापी तथा निर्लज्ज हो। अतएव आज मैं तुम्हें दण्ड दूँगा क्योंकि मेरा वार कभी खाली नहीं जाता।

तात्पर्य : न च दैवात् परं बलम्—कोई भावी बल दिव्य शक्ति से पार नहीं पा सकता। रावण इतना पापी तथा निर्लज्ज था कि उसे इसका पता ही नहीं था कि रामचन्द्र की ह्लादिनी शक्ति माता सीता का अपहरण करने का क्या फल होगा। यही राक्षसों का अवगुण है। असत्यम् अप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्। राक्षसों को इसका ज्ञान ही नहीं है कि भगवान् सृष्टि के शासक हैं। वे सोचते हैं कि सब कुछ संयोगवश उत्पन्न हुआ है

और उसका न तो कोई शासक या राजा है न नियन्ता। इसीलिए वे स्वतंत्र होकर स्वेच्छा से कर्म करते हैं और इस हद तक पहुँच जाते हैं कि लक्ष्मीजी तक का अपहरण कर बैठते हैं। रावण की यह नीति किसी भी भौतिकतावादी के लिए अत्यन्त घातक है। निस्सन्देह, इससे भौतिकतावादी सभ्यता का विनाश होता है। तो भी नास्तिक लोग राक्षस हैं अतएव वे घृणित से घृणित कर्म करते हैं जिसके लिए वे अवश्य ही दण्डित होते हैं। धर्म भगवान् के आदेशों से युक्त है अतएव जो भी इन आदेशों का पालन करता है वही धर्मी है। जो भगवान् के आदेशों का पालन नहीं करता वह अधर्मी है और उसे दण्डित होना पड़ता है।

एवं क्षिपन्धनुषि सन्धितमुत्ससर्ज

बाणं स वज्रमिव तद्दृदयं बिभेद ।

सोऽसृग्वमन्दशमुखैर्न्यपतद्विमाना-

द्धाहेति जल्पति जने सुकृतीव रिक्तः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; क्षिपन्—डॉटते हुए, धिक्कारते हुए; धनुषि—धनुष पर; सन्धितम्—तीर चढ़ाकर; उत्ससर्ज—उसकी ओर छोड़ा; बाणम्—बाण; सः—वह तीर; वज्रम् इव—वज्र की भाँति; तत्-हृदयम्—रावण के हृदय को; बिभेद—बेध डाला; सः—वह, रावण; असृक्—रक्त; वमन्—कै करता; दश-मुखैः—दसों मुँहों से; न्यपतत्—गिर पड़ा; विमानात्—अपने विमान से; हाहा—हाय-हाय, क्या हुआ; इति—इस प्रकार; जल्पति—दहाड़ते हुए; जने—सारे लोगों के सामने; सुकृती इव—पुण्यात्मा की तरह; रिक्तः—पुण्यों के चुक जाने पर।

इस प्रकार रावण को धिक्कारने के बाद भगवान् रामचन्द्र ने अपने धनुष पर बाण रखा और रावण को निशाना बनाकर बाण छोड़ा जो रावण के हृदय में वज्र के समान बेध गया। इसे देखकर रावण के अनुयायियों ने चिल्लाते हुए तुमुल ध्वनि की “हाय! हाय!” “क्या हो गया?” क्योंकि रावण अपने दसों मुखों से रक्त वमन करता हुआ अपने विमान से उसी तरह नीचे गिर पड़ा जिस प्रकार कोई पुण्यात्मा अपने पुण्यों के चुक जाने पर स्वर्ग से पृथ्वी पर आ गिरता है।

तात्पर्य : भगवद्गीता (९.२१) में कहा गया है—*क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति*—जब पुण्यों के फलों का क्षय हो जाता है तो स्वर्ग का भोग करने वाले पुनः पृथ्वी पर आ गिरते हैं। इस जगत के सकाम कर्म ऐसे हैं कि कोई चाहे पुण्य करे या पाप, उसे इसी संसार के भीतर भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में रहना होता है क्योंकि पाप या पुण्य के द्वारा बारम्बार जन्म-मृत्यु की माया के चंगुल से छूटा नहीं जा सकता। रावण को किसी तरह समस्त ऐश्वर्यों से युक्त महान् साम्राज्य का राजपद मिल गया था, किन्तु सीतादेवी का अपहरण जैसा पापकर्म करने के कारण उसके सारे पुण्यकर्मों के फल विनष्ट हो गये थे। यदि कोई किसी महापुरुष

का, विशेष रूप से भगवान् का अपमान करता है तो वह निस्सन्देह अत्यन्त अधम हो जाता है और अपने पुण्यकर्मों के फल से विरहित होकर रावण तथा अन्य राक्षसों की भाँति नीचे गिर जाता है। इसीलिए सलाह दी जाती है कि मनुष्य पाप-पुण्य दोनों से ऊपर उठे और समस्त उपाधियों से रहित शुद्ध अवस्था में रहे ( सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं तत्परत्वेन निर्मलम् )। जब कोई मनुष्य भक्ति में स्थिर हो जाता है तो वह भौतिक स्तर से ऊपर चला जाता है। भौतिक स्तर पर उच्च तथा निम्न दशाएँ होती हैं, किन्तु भौतिक स्तर से ऊपर होने पर मनुष्य आध्यात्मिक स्थिति में सदैव स्थिर रहता जाता है ( स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते )। रावण या उस जैसे अन्य लोग भले ही इस भौतिक संसार में शक्तिशाली एवं ऐश्वर्यवान हों, किन्तु उनके पद सुरक्षित नहीं हैं क्योंकि अन्ततः वे अपने कर्मफलों से बँधे रहते हैं ( कर्मणा दैवनेत्रेण )। हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि हम प्रकृति के नियमों के पूर्णतः अधीन हैं—

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।

अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥

“प्रकृति के तीन गुणों के प्रभाव के अन्तर्गत मोहग्रस्त जीव अपने को उन सारे कर्मों का कर्ता मान बैठता है जो वास्तव में प्रकृति द्वारा सम्पन्न होते हैं।” ( भगवद्गीता ३.२७ ) किसी को न तो अपने उच्च स्थान का घमंड होना चाहिए और न ही अपने को प्रकृति के नियमों से स्वतंत्र मानकर रावण की तरह कर्म करना चाहिए।

ततो निष्क्रम्य लङ्काया यातुधान्यः सहस्रशः ।

मन्दोदर्या समं तत्र प्ररुदन्त्य उपाद्रवन् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; निष्क्रम्य—बाहर निकल कर; लङ्कायाः—लंका से; यातुधान्यः—राक्षसों की पत्नियाँ; सहस्रशः—हजारों की संख्या में; मन्दोदर्या—रावण की पत्नी मन्दोदरी इत्यादि के; समम्—साथ; तत्र—वहाँ; प्ररुदन्त्यः—विलाप करती; उपाद्रवन्—( अपने मृत पतियों के ) पास आईं।

तत्पश्चात् वे सारी स्त्रियाँ जिनके पति युद्ध में मारे जा चुके थे, रावण की पत्नी मन्दोदरी के साथ लंका से बाहर आईं। वे निरन्तर विलाप करती हुई रावण तथा अन्य राक्षसों के शवों के निकट पहुँचीं।

स्वान्स्वान्बन्धून्परिष्वज्य लक्ष्मणेषुभिरर्दितान् ।

रुरुदुः सुस्वरं दीना घ्नन्त्य आत्मानमात्मना ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

स्वान् स्वान्—अपने-अपने पतियों के; बन्धून्—मित्रों को; परिष्वज्य—आलिंगन करती हुई; लक्ष्मण-इषुभिः—लक्ष्मण के बाणों से; अर्दितान्—मारे गये; रुरुदुः—वे सभी पत्नियाँ करुण विलाप करने लगीं; सु-स्वरम्—मीठे स्वर में; दीनाः—अत्यन्त दयनीय; घ्नन्त्यः—पीटती हुई; आत्मानम्—अपनी छाती; आत्मना—अपने आप से।

लक्ष्मण के बाणों द्वारा मारे गये अपने-अपने पतियों के शोक में अपनी छाती पीटती हुई स्त्रियों ने अपने-अपने पतियों का आलिंगन किया और फिर वे कारुणिक स्वर में रोदन करने लगीं जो हर एक को द्रवित करने वाला था।

हा हताः स्म वयं नाथ लोकरावण रावण ।

कं यायाच्छरणं लङ्का त्वद्विहीना परार्दिता ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

हा—हाय; हताः स्म—मारी गईं; वयम्—हम सभी; नाथ—हे रक्षक; लोक-रावण—हे पति, जिसने इतने लोगों को रुलाया; रावण—हे रावण, जो अन्यो को रुला सकता है; कम्—किसकी; यायात्—जायेगा; शरणम्—शरण में; लङ्का—लंका का राज्य; त्वत्-विहीना—तुम्हारे न होने पर; पर-अर्दिता—शत्रुओं द्वारा पराजित।

हे नाथ! हे स्वामी! तुम अन्यो की मुसीबत की प्रतिमूर्ति थे; अतएव तुम रावण कहलाते थे। किन्तु अब जब तुम पराजित हो चुके हो, हम भी पराजित हैं क्योंकि तुम्हारे बिना इस लंका के राज्य को शत्रु ने जीत लिया है। बताओ न अब लङ्का किसकी शरण में जायेगी?

तात्पर्य : रावण की पत्नी मन्दोदरी तथा अन्य पत्नियाँ भलीभाँति जानती थीं कि रावण कितना क्रूर व्यक्ति है। “रावण” शब्द का अर्थ ही है “जो अन्यो को सताता है।” रावण निरन्तर अन्यो को मुसीबत में डालता रहा, किन्तु जब उसके पापकृत्यो की पराकाष्ठा सीतादेवी को कष्ट देने तक पहुँच गई तो वह भगवान् रामचन्द्र द्वारा मार डाला गया।

न वै वेद महाभाग भवान्कामवशं गतः ।

तेजोऽनुभावं सीताया येन नीतो दशामिमाम् ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; वै—निस्सन्देह; वेद—जान पाया; महा-भाग—हे भाग्यशाली; भवान्—आप; काम-वशम्—काम के वशीभूत; गतः—होकर; तेजः—प्रभाव से; अनुभावम्—ऐसे प्रभाव के फलस्वरूप; सीतायाः—सीतादेवी के; येन—जिसके द्वारा; नीतः—ले जाया गया; दशाम्—स्थिति को; इमाम्—इस प्रकार की ( विनाश की )।

हे परम सौभाग्यवान्, तुम कामवासना के वशीभूत हो गये थे; अतएव तुम सीतादेवी के प्रभाव

( तेज ) को नहीं समझ सके। तुम भगवान् रामचन्द्र द्वारा मारे जाकर सीताजी के शाप से इस दशा को प्राप्त हुए हो।

तात्पर्य : ऐसा नहीं है कि केवल सीतादेवी ही शक्तिशाली थीं अपितु कोई भी स्त्री सीतादेवी के पदचिह्नों पर चलकर ऐसी ही शक्तिशाली बन सकती है। वैदिक साहित्य के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं। जहाँ भी हम आदर्श सती स्त्रियों का वर्णन पाते हैं सीताजी का नाम उसमें अवश्य मिलता है। रावण की पत्नी मन्दोदरी भी परम सती थी। इसी प्रकार द्रौपदी भी पाँच उच्च सतियों में से एक है। जिस प्रकार मनुष्य को ब्रह्मा, नारद जैसे महापुरुषों का अनुसरण करना चाहिए उसी प्रकार हर स्त्री को भी सीता, मन्दोदरी, द्रौपदी जैसी आदर्श स्त्रियों के पथ का अनुसरण करना चाहिए। सती रहकर तथा अपने पति के प्रति आज्ञाकारिणी बनकर स्त्री अपने को दैवी शक्ति से सम्पन्न करती है। यह नैतिक सिद्धान्त है कि मनुष्य को मन में पराई स्त्री के प्रति विषयवासना की भावना नहीं लानी चाहिए। मातृवत् परदारेषु—बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि पराई स्त्री को अपनी माता के तुल्य देखे। यही चाणक्य श्लोक का (१०) आदेश है—

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ट्रवत् ।

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ॥

“जो कोई पराई स्त्री को अपनी माता की तरह, पराये धन को धूल के समान तथा सारे जीवों को अपने समान मानता है वह पण्डित माना जाता है।” इस तरह रावण न केवल भगवान् रामचन्द्र द्वारा अपितु अपनी ही पत्नी मन्दोदरी द्वारा भी धिक्कारा गया। चूँकि वह सती स्त्री थी अतएव वह अन्य सती की, विशेष रूप से सीतादेवी जैसी पत्नी की, शक्ति को जानती थी।

कृतैषा विधवा लङ्का वयं च कुलनन्दन ।

देहः कृतोऽन्नं गृधाणामात्मा नरकहेतवे ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

कृता—तुम्हारे द्वारा की गई; एषा—इस समस्त; विधवा—संरक्षकविहीन; लङ्का—लंका-राज्य; वयम् च—हमें भी; कुल-नन्दन—हे राक्षसों के आनन्द; देहः—शरीर; कृतः—तुम्हारे द्वारा बनाई गई; अन्नम्—खाद्य पदार्थ; गृधाणाम्—गीधों का; आत्मा—तथा तुम्हारी आत्मा; नरक-हेतवे—नरक जाने के लिए।

हे राक्षसकुल के हर्ष, तुम्हारे ही कारण अब लंका-राज्य तथा हम सबों का भी कोई संरक्षक नहीं रहा। तुमने अपने कृत्यों के ही कारण अपने शरीर को गीधों का आहार और अपनी आत्मा को नरक

जाने का पात्र बना दिया है।

तात्पर्य : जो भी रावण के मार्ग पर चलता है उसकी भर्त्सना दो प्रकार से की जाती है—उसका शरीर कुत्तों तथा गीधों के खाने योग्य रहता है तथा उसकी आत्मा नरक में जाती है। जैसा कि स्वयं भगवान् ने भगवद्गीता (१६.१९) में कहा है—

तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ।

क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥

“जो लोग ईर्ष्यालु तथा शैतान हैं, जो मनुष्यों में सबसे नीच हैं उन्हें मैं भवसागर में विविध राक्षस-योनियों में डालता हूँ।” इस तरह रावण, हिरण्यकशिपु, कंस तथा दंतवक्र जैसे नास्तिकों की गति नारकीय जीवन में है। रावण की पत्नी मन्दोदरी सती होने के कारण सब कुछ जानती थी। यद्यपि वह अपने पति की मृत्यु पर विलाप कर रही थी, किन्तु वह जानती थी कि उसके शरीर और आत्मा का क्या होगा क्योंकि भले ही हमें भौतिक आँखों से यह न दिखे, किन्तु ज्ञान की आँखों से देखा जा सकता है ( पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः )। वैदिक इतिहास में ऐसे कितने ही उदाहरण हैं जिनमें मनुष्य के ईश्वरविहीन होने पर प्रकृति के नियमों द्वारा भर्त्सित होना पड़ता है।

श्रीशुक उवाच

स्वानां विभीषणश्चक्रे कोसलेन्द्रानुमोदितः ।

पितृमेधविधानेन यदुक्तं साम्परायिकम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; स्वानाम्—स्वजनों का; विभीषणः—रावण के भाई तथा रामचन्द्र-भक्त विभीषण ने; चक्रे—सम्पन्न किया; कोसल-इन्द्र-अनुमोदितः—कोसल के राजा भगवान् रामचन्द्र द्वारा अनुमोदित; पितृ-मेध-विधानेन—पिता या किसी परिजन की मृत्यु के बाद पुत्र द्वारा सम्पन्न होने वाले अन्त्येष्टि कर्म द्वारा; यत् उक्तम्—निर्धारित; साम्परायिकम्—नरक जाने से बचाने के लिए व्यक्ति मृत्यु के बाद किए जाने वाले कर्म।

श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा : रावण के पवित्र भाई तथा रामचन्द्र के भक्त विभीषण को कोसल के राजा भगवान् रामचन्द्र से अनुमति प्राप्त हो गई तो उसने अपने परिवार के सदस्यों को नरक जाने से बचाने के लिए आवश्यक अन्त्येष्टि कर्म सम्पन्न किये।

तात्पर्य : एक शरीर छोड़ने के बाद मनुष्य दूसरे शरीर को प्राप्त करता है, किन्तु कभी-कभी यदि वह अधिक पापी होता है तो उसे दूसरे शरीर में देहान्तरण करने नहीं दिया जाता जिससे वह प्रेत बन जाता है।

मृत व्यक्ति को प्रेतजीवन से बचाने के लिए शास्त्रविहित अन्त्येष्टि कर्म या श्राद्ध कर्म किया जाना चाहिए। रावण का वध भगवान् रामचन्द्र द्वारा हुआ था; अतएव उसे नरक में जाना था, किन्तु भगवान् रामचन्द्र की सलाह से रावण के भाई विभीषण ने मृतक के लिए निर्धारित सारे कर्म सम्पन्न किये। इस तरह भगवान् रामचन्द्र रावण की मृत्यु के बाद भी उस पर दयालु थे।

ततो ददर्श भगवानशोकवनिकाश्रमे ।

क्षामां स्वविरहव्याधिं शिंशपामूलमाश्रिताम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; ददर्श—देखा; भगवान्—भगवान् ने; अशोक-वनिक-आश्रमे—अशोक वृक्षों के वन में एक छोटी सी झोपड़ी में; क्षामाम्—अत्यन्त दुबली-पतली; स्व-विरह-व्याधिम्—अपने ( भगवान् रामचन्द्र के ) वियोग रोग से पीड़ित; शिंशपा—शिंशपा ( शीशम ) वृक्ष की; मूलम्—जड़ का; आश्रिताम्—सहारा लिए।

तत्पश्चात् भगवान् रामचन्द्र ने सीतादेवी को अशोकवन में शिंशपा नामक वृक्ष के नीचे एक छोटी सी कुटिया में बैठी पाया। वे राम के वियोग के कारण दुखी होने से अत्यन्त दुबली-पतली हो गई थीं।

रामः प्रियतमां भार्या दीनां वीक्ष्यान्वकम्पत ।

आत्मसन्दर्शनाह्लादविकसन्मुखपङ्कजाम् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

रामः—रामचन्द्र; प्रिय-तमाम्—अपनी अत्यन्त प्रिय; भार्याम्—पत्नी को; दीनाम्—दीन अवस्था में; वीक्ष्य—देखकर; अन्वकम्पत—अत्यन्त दयालु हो उठे; आत्म-सन्दर्शन—अपने प्रिय को देखने पर; आह्लाद—आनन्दमय जीवन का भाव; विकसत्—प्रकट करते हुए; मुख—मुँह; पङ्कजाम्—कमल सदृश।

अपनी पत्नी को उस दशा में देखकर भगवान् रामचन्द्र अत्यधिक दयार्द्र हो उठे। जब वे पत्नी के समक्ष आये तो वे भी अपने प्रियतम को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं और उनके कमल सदृश मुख से आह्लाद झलकने लगा।

आरोप्यारुरुहे यानं भ्रातृभ्यां हनुमद्युतः ।

विभीषणाय भगवान्दत्त्वा रक्षोगणेशताम् ।

लङ्कामायुश्च कल्पान्तं ययौ चीर्णव्रतः पुरीम् ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ



आरोप्य—चढ़ाकर; आरुरुहे—स्वयं चढ़ गये; यानम्—विमान में; भ्रातृभ्याम्—अपने भाई लक्ष्मण तथा सेनापति सुग्रीव समेत; हनुमत्-युतः—हनुमान समेत; विभीषणाय—रावण के भाई विभीषण को; भगवान्—भगवान् ने; दत्त्वा—सौंप दिया; रक्षः-गण-ईशताम्—लंका के राक्षसों पर शासन करने का अधिकार; लङ्काम्—लंका-राज्य; आयुः च—तथा जीवन ( आयु ); कल्प-अन्तम्—एक कल्प के अन्त तक, अनेकानेक वर्षों के लिए; ययौ—घर चले गये; चीर्ण-व्रतः—वनवास की अवधि पूरी करके; पुरीम्—अयोध्या पुरी को।

भगवान् रामचन्द्र ने विभीषण को लंका के राक्षसों पर एक कल्प तक राज्य करने का अधिकार सौंपकर सीतादेवी को पुष्प से सज्जित विमान ( पुष्पक विमान ) में बैठाया और फिर वे स्वयं उसमें बैठ गये। अपने वनवास की अवधि समाप्त होने पर, हनुमान, सुग्रीव तथा अपने भाई लक्ष्मणसमेत, भगवान् अयोध्या लौट आये।

अवकीर्यमाणः सुकुसुमैर्लोकपालार्पितैः पथि ।

उपगीयमानचरितः शतधृत्यादिभिर्मुदा ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

अवकीर्यमाणः—बिखरे गये; सु-कुसुमैः—सुगन्धित सुन्दर फूलों से; लोक-पाल-अर्पितैः—राजाओं द्वारा भेंट किये गये; पथि—मार्ग पर; उपगीयमान-चरितः—अपने असामान्य कार्यों के लिए अभिवन्दित; शतधृति-आदिभिः—ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं के द्वारा; मुदा—अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक।

जब भगवान् रामचन्द्र अपनी राजधानी अयोध्या लौटे तो मार्ग पर लोकपालों ने उनके स्वागतार्थ उनके शरीर पर सुन्दर सुगन्धित फूलों की वर्षा की और ब्रह्मा तथा अन्य देवताओं जैसे महापुरुषों ने परम प्रसन्न होकर भगवान् के कार्यों का गुणगान किया।

गोमूत्रयावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलाम्बरम् ।

महाकारुणिकोऽतप्यज्जटिलं स्थण्डिलेशयम् ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

गो-मूत्र-यावकम्—गाय के मूत्र में पकाये जौ को खाकर; श्रुत्वा—सुनकर; भ्रातरम्—अपने भाई भरत को; वल्कल-अम्बरम्—पेड़ों की छाल से आच्छादित; महा-कारुणिकः—अत्यन्त दयालु रामचन्द्रजी ने; अतप्यत्—अत्यधिक शोक व्यक्त किया; जटिलम्—सिर पर जटा बढ़ाये; स्थण्डिले-शयम्—कुशासन पर लेटते हुए।

अयोध्या पहुँचकर भगवान् रामचन्द्र ने सुना कि उनकी अनुपस्थिति में उनका भाई भरत गोमूत्र में पकाये जौ को खाता था, अपने शरीर को वृक्षों की छाल से ढकता था, सिर पर जटा बढ़ाये, कुशों की चटाई पर सोता था। अत्यन्त कृपालु भगवान् ने इस पर अत्यधिक सन्ताप व्यक्त किया।

भरतः प्राप्तमाकर्ण्य पौरामात्यपुरोहितैः ।

पादुके शिरसि न्यस्य रामं प्रत्युद्यतोऽग्रजम् ।  
 नन्दिग्रामात्स्वशिविरादगीतवादित्रनिःस्वनैः ॥ ३५ ॥  
 ब्रह्मघोषेण च मुहुः पठद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ।  
 स्वर्णकक्षपताकाभिर्हैमैश्चित्रध्वजै रथैः ॥ ३६ ॥  
 सदश्वै रुक्मसन्नाहैर्भटैः पुरटवर्मभिः ।  
 श्रेणीभिर्वारमुख्याभिर्भृत्यैश्चैव पदानुगैः ॥ ३७ ॥  
 पारमेष्ठ्यान्पुपादाय पण्यान्युच्चावचानि च ।  
 पादयोर्न्यपतत्प्रेम्णा प्रक्लिन्नहृदयेक्षणः ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

भरतः— भरत ने; प्राप्तम्—घर वापसी; आकर्ण्य—सुनकर; पौर—सारे नागरिक; अमात्य—सारे मंत्री; पुरोहितैः—सारे पुरोहितों के साथ; पादुके—दो खड़ाऊँ; शिरसि—सिर पर; न्यस्य—रखकर; रामम्—रामचन्द्र को; प्रत्युद्यतः—अगवानी के लिए; अग्रजम्—अपने बड़े भाई; नन्दिग्रामात्—नन्दिग्राम से; स्व-शिविरात्—अपने खेमे से; गीत-वादित्र—गायन-बाजन; निःस्वनैः—ऐसी ध्वनियों से युक्त; ब्रह्म-घोषेण—वैदिक मंत्रों के उच्चारण की ध्वनि से; च—तथा; मुहुः—सदैव; पठद्भिः—वेदों से पाठ करते हुए; ब्रह्म-वादिभिः—श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा; स्वर्ण-कक्ष-पताकाभिः—सुनहरे किनारे वाली झंडियों से अलंकृत; हैमैः—सुनहरे; चित्र-ध्वजैः—चित्रित पताकाओं से; रथैः—रथों से; सत्-अश्वैः—सुन्दर घोड़ों से; रुक्म—सुनहरे; सन्नाहैः—जिरहबख्तर या कवच से; भटैः—सैनिकों से; पुरट-वर्मभिः—सुनहरे कवच से ढका; श्रेणीभिः—जुलूस से; वार-मुख्याभिः—सुन्दर-सुसज्जित वेश्याओं के साथ; भृत्यैः—नौकरों के साथ; च—भी; एव—निस्सन्देह; पद-अनुगैः—पैदल सेना से; पारमेष्ठ्यानि—शाही स्वागत के उपयुक्त अन्य साज-सामान; उपादाय—लेकर; पण्यानि—बहुमूल्य रत्न.; उच्च-अवचानि—विभिन्न मूल्यों वाले; च—भी; पादयोः—भगवान् के चरणकमलों पर; न्यपतत्—गिर पड़े; प्रेम्णा—प्रेम से; प्रक्लिन्न—आर्द्र; हृदय—हृदय; ईक्षणः—आँखें।

जब भरतजी को पता चला कि भगवान् रामचन्द्र अपनी राजधानी अयोध्या लौट रहे हैं तो तुरन्त ही वे भगवान् की खड़ाऊँ अपने सिर पर रखे और नन्दिग्राम स्थित अपने खेमे से बाहर आ गये। भरतजी के साथ मंत्री, पुरोहित, अन्य भद्र नागरिक, मधुर गायन करते पेशेवर गवैये तथा वैदिक मंत्रों का उच्चस्वर से पाठ करने वाले विद्वान ब्राह्मण थे। उनके पीछे जुलूस में रथ थे जिनमें सुन्दर घोड़े जुते थे जिनकी लगामें सुनहरी रस्सियों की थीं। ये रथ सुनहरी किनारी वाली पताकाओं तथा अन्य विविध आकार-प्रकार की पताकाओं से सजाये गये थे। सैनिक सुनहरे कवचों से लैस थे, नौकर पान-सुपारी लिए थे और साथ में अनेक विख्यात सुन्दर वेश्याएँ थीं। अनेक नौकर पैदल चल रह थे और वे छाता, चामर, बहुमूल्य रत्न तथा उपयुक्त विविध राजसी सामान लिए हुए थे। इस तरह प्रेमानन्द से आर्द्र हृदय एवं अश्रुओं से पूरित नेत्रोंवाले भरतजी भगवान् रामचन्द्र के निकट पहुँचे और अत्यन्त भावविभोर होकर उनके चरणकमलों पर गिर गये।

पादुके न्यस्य पुरतः प्राञ्जलिर्बाष्पलोचनः ।  
 तमाश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयन्नेत्रजैर्जलैः ॥ ३९ ॥

रामो लक्ष्मणसीताभ्यां विप्रेभ्यो येऽर्हसत्तमाः ।

तेभ्यः स्वयं नमश्चक्रे प्रजाभिश्च नमस्कृतः ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

पादुके—दोनों खड़ाओं को; न्यस्य—रखकर; पुरतः—भगवान् रामचन्द्र के सामने; प्राञ्जलिः—हाथ जोड़े; बाष्प-लोचनः—अश्रुपूरित आँखों से; तम्—भरत को; आश्लिष्य—आलिंगन करके; चिरम्—देर तक; दोर्भ्याम्—अपनी दोनों भुजाओं से; स्नापयन्—नहलाते हुए; नेत्र-जैः—नेत्रों से निकलते हुए; जलैः—जल से; रामः—रामचन्द्र; लक्ष्मण-सीताभ्याम्—लक्ष्मण तथा सीता समेत; विप्रेभ्यः—विद्वान् ब्राह्मणों को; ये—तथा अन्य जो; अर्ह-सत्तमाः—पूजनीय; तेभ्यः—उनको; स्वयम्—स्वयं; नमः-चक्रे—नमस्कार किया; प्रजाभिः—नागरिकों द्वारा; च—तथा; नमः-कृतः—नमस्कार किया गया।

भगवान् रामचन्द्र के समक्ष खड़ाओं को रखकर भरतजी आँखों में आँसू भरकर और दोनों हाथ जोड़कर खड़े रहे। भगवान् रामचन्द्र अपनी दोनों भुजाओं में भरत को भरकर दीर्घकाल तक आलिंगन करते रहे और उन्होंने उन्हें अपने आँसुओं से नहला दिया। तत्पश्चात् सीतादेवी तथा लक्ष्मण के साथ रामचन्द्र ने विद्वान् ब्राह्मणों तथा परिवार के गुरुजनों को नमस्कार किया। समस्त अयोध्यावासियों ने भगवान् को सादर नमस्कार किया।

धुन्वन्त उत्तरासङ्गान्पतिं वीक्ष्य चिरागतम् ।

उत्तराः कोसला माल्यैः किरन्तो ननृतुर्मुदा ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

धुन्वन्तः—हिलाते हुए; उत्तर-आसङ्गान्—अपने उत्तरीय वस्त्रों को; पतिम्—भगवान् को; वीक्ष्य—देखकर; चिर-आगतम्—वनवास से अनेक वर्षों बाद लौटे; उत्तराः कोसलाः—अयोध्या के नागरिक; माल्यैः किरन्तः—मालाएँ अर्पित करते हुए; ननृतुः—नाचने लगे; मुदा—प्रसन्नता के मारे।

अयोध्या के नागरिकों ने अपने राजा को दीर्घकाल के बाद लौटे देखकर उन्हें फूल की मालाएँ अर्पित कीं, अपने उत्तरीय वस्त्र ( दुपट्टे ) हिलाए और वे परम प्रसन्न होकर खूब नाचे।

पादुके भरतोऽगृह्णाच्चामरव्यजनोत्तमे ।

विभीषणः ससुग्रीवः श्वेतच्छत्रं मरुत्सुतः ॥ ४२ ॥

धनुर्निषङ्गाञ्छत्रघ्नः सीता तीर्थकमण्डलुम् ।

अबिभ्रदङ्गदः खड्गं हैमं चर्मक्षराण्णृप ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

पादुके—दोनों खड़ाऊँ; भरतः—भरत; अगृह्णात्—लिये थे; चामर—चँवर; व्यजन—पंखा; उत्तमे—अत्यन्त ऐश्वर्यशाली; विभीषणः—रावण का भाई; स-सुग्रीवः—सुग्रीव के साथ; श्वेत-छत्रम्—सफेद छाता; मरुत्-सुतः—वायुपुत्र हनुमान; धनुः—धनुष; निषङ्गान्—दो तरकसों सहित; शत्रुघ्नः—रामचन्द्र के भाई; सीता—सीतादेवी; तीर्थ-कमण्डलुम्—तीर्थस्थानों के जल से भरा पात्र; अबिभ्रत्—लिये हुए; अङ्गदः—अंगद नामक वानर सेनापति; खड्गम्—तलवार; हैमम्—स्वर्णम; चर्म—ढाल; ऋक्ष-राट्—ऋक्षराज जाम्बवान्; नृप—हे राजा।

हे राजा, भरतजी भगवान् राम की खड़ाऊँ लिये थे, सुग्रीव तथा विभीषण चँवर तथा सुन्दर पंखा

लिये थे, हनुमान सफेद छाता लिये हुए थे, शत्रुघ्न धनुष तथा दो तरकस लिए थे तथा सीतादेवी तीर्थस्थानों के जल से भरा पात्र लिए थीं। अंगद तलवार लिए थे और ऋक्षराज जाम्बवान सुनहरी ढाल लिए थे।

पुष्पकस्थो नुतः स्त्रीभिः स्तूयमानश्च वन्दिभिः ।  
विरेजे भगवान् राजान् ग्रहैश्चन्द्र इवोदितः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

पुष्पक-स्थः—पुष्पक विमान में आसीन; नुतः—पूजित; स्त्रीभिः—स्त्रियों द्वारा; स्तूयमानः—स्तुति किये गये; च—तथा; वन्दिभिः—बन्दीजनों के द्वारा; विरेजे—शोभायमान हुए; भगवान्—भगवान् रामचन्द्र; राजान्—हे राजा परीक्षित; ग्रहैः—ग्रहों के मध्य; चन्द्रः—चन्द्रमा; इव—सदृश; उदितः—उदित हुआ।

हे राजा परीक्षित, अपने पुष्पक विमान पर बैठे भगवान् रामचन्द्र स्त्रियों द्वारा स्तुति किये जाने पर तथा बन्दीजनों द्वारा गुणगान किये जाने पर ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों तारों तथा ग्रहों के बीच चन्द्रमा हो।

भ्रात्राभिनन्दितः सोऽथ सोत्सवां प्राविशत्पुरीम् ।  
प्रविश्य राजभवनं गुरुपत्नीः स्वमातरम् ॥ ४५ ॥  
गुरुन्वयस्यावरजान्पूजितः प्रत्यपूजयत् ।  
वैदेही लक्ष्मणश्चैव यथावत्समुपेयतुः ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

भ्रात्रा—अपने भाई ( भरत ) द्वारा; अभिनन्दितः—स्वागत किये जाकर; सः—उसने, रामचन्द्र ने; अथ—तत्पश्चात्; स-उत्सवाम्—उत्सव के मध्य में; प्राविशत्—प्रवेश किया; पुरीम्—अयोध्या नगरी में; प्रविश्य—प्रवेश करके; राज-भवनम्—राजमहल में; गुरु-पत्नीः—कैकेयी तथा अन्य विमाताओं; स्व-मातरम्—अपनी निजी माता ( कौशल्या ) को; गुरुन्—गुरुओं को ( श्री वसिष्ठ तथा अन्य ); वयस्य—हम उम्र वाले मित्रों को; अवर-जान्—तथा अपने से छोटों को; पूजितः—उनके द्वारा पूजित होकर; प्रत्यपूजयत्—बदले में नमस्कार किया; वैदेही—सीतादेवी; लक्ष्मणः—लक्ष्मण; च एव—तथा; यथा-वत्—उपयुक्त ढंग से; समुपेयतुः—स्वागत किये जाकर महल में घुसे।

तत्पश्चात् अपने भाई भरत द्वारा स्वागत किये जाकर भगवान् रामचन्द्र एक उत्सव के बीच अयोध्या नगरी में प्रविष्ट हुए। जब वे महल में घुसे तो उन्होंने कैकेयी तथा महाराज दशरथ की अन्य पत्नी एवं अपनी माता कौशल्या—इन सभी माताओं को नमस्कार किया। उन्होंने अपने गुरुओं को, यथा वसिष्ठ को भी प्रणाम किया। उनके हमउम्र मित्रों तथा उनसे कम आयु वाले मित्रों ने उनकी पूजा की तो उन्होंने भी उनका अभिवादन किया। लक्ष्मण तथा सीतादेवी ने भी वैसा ही किया। इस प्रकार

वे सभी महल में प्रविष्ट हुए।

पुत्रान्स्वमातरस्तास्तु प्राणांस्तन्व इवोत्थिताः ।

आरोप्याङ्केऽभिषिञ्चन्त्यो बाष्पौघैर्विजहुः शुचः ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

पुत्रान्—पुत्रों को; स्व-मातरः—अपनी माताएँ; ताः—वे, कौशल्या तथा कैकेयी; तु—लेकिन; प्राणान्—प्राण; तन्वः—शरीर; इव—सदृश; उत्थिताः—उठकर; आरोप्य—लेकर; अङ्के—गोद में; अभिषिञ्चन्त्यः—अपने पुत्रों के शरीरों को तर करते हुए; बाष्प—आँसुओं से; ओघैः—लगातार गिराते; विजहुः—बन्द कर दिया; शुचः—अपने पुत्रों के वियोग से जनित शोक।

अपने पुत्रों को देखकर राम, लक्ष्मण भरत तथा शत्रुघ्न की माताएँ तुरन्त उठ खड़ी हुईं मानो निश्चेष्ट शरीर में चेतना आ गई हो। माताओं ने अपने पुत्रों को अपनी गोदों में भर लिया और उन्हें आँसुओं से नहलाकर अपने दीर्घकालीन विछोह के सन्ताप से छुटकारा पा लिया।

जटा निर्मुच्य विधिवत्कुलवृद्धैः समं गुरुः ।

अभ्यषिञ्चद्यथैवेन्द्रं चतुःसिन्धुजलादिभिः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

जटाः—सिर पर बड़ी जटा; निर्मुच्य—मुँड़वाकर, साफ करवा कर; विधि-वत्—विधि-विधान के अनुसार; कुल-वृद्धैः—परिवार के गुरुजनों के; समम्—साथ; गुरुः—गुरु वसिष्ठ ने; अभ्यषिञ्चत्—भगवान् रामचन्द्र का अभिषेक किया; यथा—जिस तरह; एव—सदृश; इन्द्रम्—इन्द्र को; चतुः-सिन्धु-जल—चारों समुद्रों का जल; आदिभिः—स्नान की अन्य सामग्रियों से।

कुलगुरु वसिष्ठ ने भगवान् रामचन्द्र के सिर की जटाएँ मुँड़वा दीं। तत्पश्चात् कुल के गुरुजनों के सहयोग से उन्होंने चारों समुद्रों के जल तथा अन्य सामग्रियों के द्वारा भगवान् रामचन्द्र का अभिषेक उसी तरह सम्पन्न किया जिस तरह राजा इन्द्र का हुआ था।

एवं कृतशिरःस्नानः सुवासाः स्रग्व्यलङ्कृतः ।

स्वलङ्कृतैः सुवासोभिर्भ्रातृभिर्भार्यया बभौ ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस तरह; कृत-शिरः-स्नानः—सिर धोकर पूरी तरह स्नान कर चुकने के बाद; सु-वासाः—अच्छे वस्त्र पहने; स्रग्वि-अलङ्कृतः—माला से अलंकृत होकर; सु-अलङ्कृतैः—भलीभाँति सजकर; सु-वासोभिः—सुन्दर वस्त्रों से अलंकृत; भ्रातृभिः—अपने भाइयों सहित; भार्यया—अपनी पत्नी सीता समेत; बभौ—भगवान् अत्यन्त तेजोमय बन गये।

भलीभाँति स्नान करके तथा अपना सिर घुटा करके भगवान् रामचन्द्र ने अपने आपको सुन्दर वस्त्रों से सजित और एक माला तथा आभूषणों से अलंकृत किया। इस प्रकार वे अपने ही समान वस्त्र तथा आभूषण धारण किये अपने भाइयों तथा पत्नी के साथ अत्यन्त तेजोमय लग रहे थे।

अग्रहीदासनं भ्रात्रा प्रणिपत्य प्रसादितः ।  
 प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः ।  
 जुगोप पितृवद्रामो मेनिरे पितरं च तम् ॥ ५० ॥

#### शब्दार्थ

अग्रहीत्—स्वीकार किया; आसनम्—राजसिंहासन; भ्रात्रा—अपने भाई ( भरत ) द्वारा; प्रणिपत्य—पूर्णतया उनकी शरण में जाकर; प्रसादितः—प्रसन्न होकर; प्रजाः—तथा प्रजा; स्व-धर्म-निरताः—अपने-अपने वृत्तिपरक कार्यों में संलग्न; वर्णाश्रम—वर्ण तथा आश्रम के अनुसार; गुण-अन्विताः—गुणों से पूरित; जुगोप—भगवान् ने उनकी रक्षा की; पितृ-वत्—पिता की भाँति; रामः—रामचन्द्र ने; मेनिरे—उन्होंने माना; पितरम्—पिता के तुल्य; च—भी; तम्—उनको, रामचन्द्रजी को।

तब भरत की पूर्ण शरणागति से प्रसन्न होकर भगवान् रामचन्द्र ने राजसिंहासन स्वीकार किया।

वे प्रजा की रक्षा पिता की भाँति करने लगे और प्रजा ने भी वर्ण तथा आश्रम के अनुसार अपने-अपने वृत्तिपरक कार्यों में लगकर उन्हें पितृतुल्य स्वीकार किया।

तात्पर्य : लोगों को रामराज्य जैसी व्यवस्था प्रिय है और आज भी राजनीतिक लोग कभी कभी रामराज्य नामक दल बना लेते हैं, किन्तु दुर्भाग्यवश उन्हें भगवान् राम में कोई श्रद्धा नहीं है। कभी-कभी कहा जाता है कि लोग ईशविहीन ईश-राज्य चाहते हैं। किन्तु ऐसी महत्त्वाकांक्षा कभी पूरी होने वाली नहीं है। अच्छी सरकार तभी विद्यमान रह सकती है जब नागरिकों तथा सरकार के मध्य वैसा ही सम्बन्ध हो जैसा कि रामचन्द्र तथा उनके नागरिकों ने प्रस्तुत किया। भगवान् रामचन्द्र ने अपने साम्राज्य पर वैसा ही शासन किया जिस तरह पिता अपनी सन्तान का पालन करता है और नागरिकों ने भी रामचन्द्र जी की अच्छी सरकार से कृतज्ञ होकर उन्हें पितृतुल्य मान लिया। नागरिकों तथा सरकार के मध्य पिता-पुत्र का सा सम्बन्ध होना चाहिए। जब परिवार में पुत्र अच्छा प्रशिक्षण पाते हैं तो वे माता-पिता के आज्ञाकारी होते हैं और जब पिता योग्य होता है तो वह सन्तानों की अच्छी देखभाल करता है। जैसा कि *स्वधर्मनिरता वर्णाश्रम गुणान्विताः* शब्दों से सूचित होता है, लोग अच्छे नागरिक थे क्योंकि उन्होंने वर्ण तथा आश्रम व्यवस्था स्वीकार की थी जिसके अनुसार समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र नाम के चार वर्ण तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास नामक चार आश्रम होते हैं। यह वास्तविक मानव-सभ्यता है। लोगों को विभिन्न वर्णाश्रम धर्मों के अनुसार प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। जैसा कि *भगवद्गीता* (४.१३) में पुष्टि की गई है—*चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः*—चार वर्णों की स्थापना भिन्न गुणों एवं कर्म के अनुसार की जानी चाहिए। अच्छी सरकार का पहला सिद्धान्त यह होना चाहिए कि वह इस वर्णाश्रम प्रणाली को लागू

करे। वर्णाश्रम का उद्देश्य लोगों को ईशभावनाभावित होने के लिए प्रेरित करना है। *वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान् विष्णुराराध्यते।* समूची वर्णाश्रम प्रणाली लोगों को वैष्णव बनाने में समर्थ होने के लिए है। *विष्णुरस्य देवता।* जब लोग विष्णु को भगवान् मानकर पूजते हैं तो वे वैष्णव बनते हैं। अतएव लोगों को उसी तरह से वर्णाश्रम प्रणाली के माध्यम से वैष्णव बनने के लिए शिक्षा दी जानी चाहिए जिस तरह रामचन्द्रजी के राज्यकाल में प्रत्येक मनुष्य को वर्णाश्रम प्रणाली का पालन करने के लिए शिक्षित किया जाता था।

मात्र कानूनों और अध्यादेशों के बल पर नागरिकों को आज्ञाकारी और कानून पालक नहीं बनाया जा सकता। यह असम्भव है। विश्वभर में न जाने कितने राज्य, विधान सभाएँ तथा संसदें हैं, फिर भी लोग चोर तथा उचक्रे हैं। अतएव अच्छी नागरिकता लादी नहीं जा सकती अपितु नागरिकों को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। जिस तरह केमिकल इंजीनियर, वकील या अन्य ज्ञान के विभागों में विशेषज्ञ बनने के लिए छात्रों के प्रशिक्षणार्थ स्कूल तथा कालेज होते हैं उसी प्रकार विद्यार्थियों को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यासी बनने की शिक्षा देने के लिए स्कूल तथा कालेज होने चाहिए। इससे अच्छी नागरिकता की प्रारम्भिक शर्त पूरी होगी (*वर्णाश्रम गुणान्विताः*)। सामान्य रूप से यदि राजा या राष्ट्रपति राजर्षि होता है तो प्रजा तथा मुख्य कार्यकारी के मध्य का सम्बन्ध स्पष्ट हो जायेगा और राज्य में किसी बिगाड़ की सम्भावना नहीं रहेगी क्योंकि चोर-उचक्रे की संख्या घट जायेगी। किन्तु कलियुग में वर्णाश्रम प्रणाली की उपेक्षा के कारण लोग सामान्यतया चोर और उचक्रे हो जाते हैं। प्रजातांत्रिक प्रणाली में ऐसे चोर तथा उचक्रे अन्य चोर-उचक्रे से पैसा इकट्ठा करते हैं जिससे हर सरकार में अव्यवस्था रहती है और कोई भी सुखी नहीं रहता। किन्तु भगवान् रामचन्द्र के राज्य में अच्छी सरकार का उदाहरण मिलता है। यदि लोग इस उदाहरण का अनुसरण करें तो सारे विश्व में अच्छी सरकार बन जायेगी।

त्रेतायां वर्तमानायां कालः कृतसमोऽभवत् ।

रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूतसुखावहे ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ

त्रेतायाम्—त्रेतायुग में; वर्तमानायाम्—यद्यपि उस काल में स्थित; कालः—समय; कृत—सत्ययुग; समः—समान; अभवत्—हुआ; रामे—रामचन्द्र की उपस्थिति के कारण; राजनि—राजा के रूप में; धर्म-ज्ञे—धार्मिक; सर्व-भूत—सारे जीवों को; सुख-आवहे—पूर्ण सुख देते हुए।

भगवान् रामचन्द्र त्रेतायुग में राजा बने थे, किन्तु उनकी सरकार अच्छी होने से वह युग सत्ययुग जैसा था। प्रत्येक व्यक्ति धार्मिक एवं पूर्ण सुखी था।

तात्पर्य : चारों युगों में से कलियुग सबसे निकृष्ट है, किन्तु यदि वर्णाश्रम धर्म की विधि लागू कर दी जाय तो इस कलियुग में भी सत्ययुग जैसी परिस्थिति लाई जा सकती है। हरे कृष्ण आन्दोलन या कृष्णभावनामृत आन्दोलन इसी प्रयोजन के निमित्त है—

कलेर्दोषनिधे राजन्नस्ति होको महान् गुणः ।

कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत् ।

“हे राजन! यद्यपि कलियुग दोषों से पूर्ण है फिर भी इस युग में एक उत्तम गुण यह है कि केवल हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करके मनुष्य भवबन्धन से छूट सकता है और दिव्य धाम को जा सकता है।” (भागवत १२.३.५१) यदि लोग ‘हरे कृष्ण हरे राम’ कीर्तन के इस आन्दोलन को स्वीकार कर लें तो वे अवश्य ही कलियुग के कल्मष से मुक्त हो जायेंगे और इस युग के लोग सत्ययुग जैसे ही सुखी हो सकेंगे। कोई भी व्यक्ति कहीं भी रहकर इस हरे कृष्ण आन्दोलन को ग्रहण कर सकता है; उसे केवल हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करना, विधि-विधानों को मानना तथा पापी जीवन के कल्मष से मुक्त होना होगा। यदि कोई पापी जीवन को तुरन्त नहीं छोड़ सकता किन्तु यदि वह भक्ति तथा श्रद्धापूर्वक हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करता है तो वह अवश्य ही सारे पापमय कर्मों से छूट जायेगा और उसका जीवन सफल हो जायेगा। परं विजयते श्रीकृष्णसङ्कीर्तनम्। यह भगवान् रामचन्द्र का आशीष है कि वे इस कलियुग में गौरसुन्दर रूप में प्रकट हुए हैं।

वनानि नद्यो गिरयो वर्षाणि द्वीपसिन्धवः ।

सर्वे कामदुग्धा आसन्प्रजानां भरतर्षभ ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ

वनानि—सारे वन; नद्यः—नदियाँ; गिरयः—पर्वत; वर्षाणि—राज्य या पृथ्वी के विभिन्न भाग; द्वीप—द्वीप; सिन्धवः—सागर; सर्वे—ये सारे; काम-दुग्धाः—अपने-अपने ऐश्वर्यों से पूरित; आसन्—थे; प्रजानाम्—सारे जीवों का; भरत-ऋषभ—हे भरतवंश में श्रेष्ठ महाराज परीक्षित।

हे भरतश्रेष्ठ महाराज परीक्षित, भगवान् रामचन्द्र के राज में सारे वन, नदियाँ, पर्वत, राज्य, सातों द्वीप तथा सातों समुद्र सारे जीवों को जीवन की आवश्यक वस्तुएँ प्रदान करने के लिए अनुकूल थे।



नाधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः ।  
मृत्युश्चानिच्छतां नासीद्रामे राजन्यधोक्षजे ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; आधि—आध्यात्मिक, अधिभौतिक तथा अधिदैविक कष्ट ( अर्थात् शरीर तथा मन के, अन्य जीवों द्वारा पहुँचाये गये तथा प्रकृति द्वारा प्रदत्त कष्ट ); व्याधि—रोग; जरा—बुढ़ापा; ग्लानि—विछोह; दुःख—कष्ट; शोक—पश्चाताप; भय—डर; क्लमाः—थकावट; मृत्युः—मरण; च—भी; अनिच्छताम्—न चाहने वालों का; न आसीत्—नहीं था; रामे—भगवान् रामचन्द्र के शासन में; राजनि—राजा होने के कारण; अधोक्षजे—भगवान्, जो इस जगत से परे हैं।

जब भगवान् रामचन्द्र इस जगत के राजा थे तो सारे शारीरिक तथा मानसिक कष्ट, रोग, बुढ़ापा, विछोह, पश्चाताप, दुख, डर तथा थकावट का नामोनिशान न था। यहाँ तक कि न चाहने वालों के लिए मृत्यु भी नहीं थी।

तात्पर्य : इतनी सारी सुविधाएँ इसलिए विद्यमान थीं क्योंकि भगवान् रामचन्द्र सम्पूर्ण जगत के राजा थे। ऐसी ही परिस्थिति इस कलियुग में भी तुरन्त लागू की जा सकती है, भले ही यह युग समस्त युगों में निकृष्ट क्यों न हो। कहा गया है कि—कलिकाले नामरूपे कृष्ण अवतार—कृष्णजी इस कलियुग में केवल अपने पवित्र नाम—हरे कृष्ण हरे राम के रूप में अवतरित होते हैं। यदि हम अपराधरहित होकर कीर्तन करें तो इस युग में राम तथा कृष्ण अब भी उपस्थित हैं। रामराज्य अत्यधिक लोकप्रिय एवं लाभदायक था और इस कलियुग में भी इस हरे कृष्ण आन्दोलन के प्रसार से वैसी ही परिस्थिति तुरन्त लाई जा सकती है।

एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः ।  
स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन्स्वयमाचरत् ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

एक-पत्नी-व्रत-धरः—दूसरी पत्नी स्वीकार न करने का अथवा किसी अन्य स्त्री से कोई सम्बन्ध न रखने का व्रत लेकर; राज-ऋषि—साधु-राजा की तरह; चरितः—जिसका चरित्र; शुचिः—शुद्ध; स्व-धर्मम्—अपने वृत्तिपरक कार्य को; गृह-मेधीयम्—गृहस्थ जीवन बिताने वाले पुरुषों को; शिक्षयन्—शिक्षा देते हुए ( अपने आचरण से ); स्वयम्—स्वयं; आचरत्—अपना कर्तव्य निभाया।

भगवान् रामचन्द्र ने एक पत्नी रखने का तथा किसी अन्य स्त्री से सम्बन्ध न रखने का व्रत ले रखा था। वे एक साधु राजा थे और उनका चरित्र उत्तम था; क्रोध उन्हें छू तक नहीं गया था। उन्होंने हर एक को, विशेष रूप से गृहस्थों को वर्णाश्रम धर्म के रूप में सदाचरण का पाठ पढ़ाया। इस तरह उन्होंने अपने निजी कार्यकलापों से सामान्य जनता को शिक्षा दी।

तात्पर्य : श्री रामचन्द्रजी ने एक-पत्नीव्रत का ज्वलन्त उदाहरण प्रस्तुत किया। लोगों को एक से अधिक

पत्नी नहीं बनानी चाहिए। उन दिनों लोग एक से अधिक पत्नी से विवाह करते थे। यहाँ तक कि श्री रामचन्द्रजी के पिता के भी एक से अधिक पत्नियाँ थीं, किन्तु भगवान् रामचन्द्र ने आदर्श राजा के रूप में केवल एक पत्नी—सीतादेवी—को स्वीकार किया। जब रावण तथा अन्य राक्षसों के द्वारा सीताजी का अपहरण हो गया था तो भगवान् रामचन्द्र चाहते तो हजारों सीताओं से ब्याह कर सकते थे, किन्तु हमें यह शिक्षा देने के लिए कि वे अपनी पत्नी के प्रति कितने निष्ठावान थे उन्होंने रावण से युद्ध किया और अन्त में उसे मार डाला। उन्होंने रावण को दण्ड दिया और अपनी पत्नी की रक्षा लोगों को यह शिक्षा देने के लिए की कि वे एक-पत्नीव्रत बनें। भगवान् रामचन्द्रजी ने केवल एक पत्नी स्वीकार की और आदर्श चरित्र प्रकट किया। इस तरह उन्होंने गृहस्थों के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत किया। गृहस्थों को चाहिए कि भगवान् रामचन्द्र के आदर्श के अनुसार जीवन बितायें जिन्होंने यह दिखलाया कि किस तरह पूर्ण व्यक्ति बना जाय। गृहस्थ होकर या पत्नी तथा बच्चों के साथ रहने की कभी भर्त्सना नहीं की जाती बशर्ते कि वर्णाश्रम धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार जीवन व्यतीत किया जाय। जो लोग इन सिद्धान्तों के अनुसार जीवन बिताते हैं, वे चाहे गृहस्थ हों या ब्रह्मचारी अथवा वानप्रस्थ, सभी समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं।

प्रेम्णानुवृत्त्या शीलैः प्रश्रयावनता सती ।

भिया हिया च भावज्ञा भर्तुः सीताहरन्मनः ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ

प्रेम्णा अनुवृत्त्या—प्रेम तथा श्रद्धापूर्वक पति की सेवा करने के कारण; शीलैः—ऐसे उत्तम आचरण के द्वारा; प्रश्रय-अवनता—सदैव पति के प्रति विनीत एवं उसे संतुष्ट करने के लिए तैयार; सती—सती साध्वी; भिया—भयभीत होने के कारण; हिया—लज्जा से; च—भी; भाव-ज्ञा—( पति के ) भाव को समझकर; भर्तुः—अपने पति के; सीता—सीतादेवी ने; अहरत्—मोहित कर लिया; मनः—मन को।

सीतादेवी अत्यन्त विनीत, आज्ञाकारिणी, लज्जालु तथा सती थीं और सदा अपने पति के भाव को समझने वाली थीं। इस प्रकार अपने चरित्र एवं प्रेम तथा सेवा से वे भगवान् के मन को पूरी तरह मोह सकीं।

तात्पर्य : जिस तरह भगवान् राम आदर्श पति हैं ( एकपत्नीव्रत ) उसी तरह माता सीता आदर्श पत्नी हैं। ऐसे संयोग से पारिवारिक जीवन अत्यन्त सुखी बन जाता है। यद् यद् आचरति श्रेष्ठस्तत् तदेवेतरो जनः—महापुरुष जो भी उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, सामान्य लोग उसी का अनुसरण करते हैं। यदि राजा, नेता तथा

ब्राह्मण शिक्षक, वैदिक साहित्य से प्राप्त उदाहरण प्रस्तुत करें तो सारा जगत स्वर्ग बन जाये। निस्सन्देह, इस जगत से नारकीय दशाओं का नामोनिशान मिट जाय।

इस प्रकार *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत “परम भगवान् रामचन्द्र की लीलाएँ” नामक दसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।